

विश्व-प्रसिद्ध

जैन तीर्थ

श्रद्धा एवं कला



महोपाध्याय ललितप्रभ सागर



શ્રદ્ધા એવં કલા



महामहिम राष्ट्रपति डा. शंकरदयाल शर्मा ने “विश्व प्रसिद्ध जैन तीर्थ: श्रद्धा एवं कला” ग्रन्थ का जोधपुर में २ फरवरी, १९९६ को लोकार्पण किया। चित्र में राष्ट्रपति जी ग्रन्थ की प्रथम प्रति महोपाध्याय श्री ललितप्रभ सागर जी को भेंट दे रहे हैं।

जैन तीर्थ

श्रद्धा एवं कर्म

लेखक

महोपाध्याय ललितप्रभ सागर

संस्करण

महेन्द्र भंसाली

प्रकाशन-वर्ष :
१९९५-९६

•

प्रकाशक :
श्री जितयशः श्री फाउंडेशन
९ सी, एस्प्लानेड रो ईस्ट,
कलकत्ता-७०० ०६९

•

सन्निधि :
गणिवर श्री महिमाप्रभ सागर जी

•

सहयोगी :
तीर्थ ग्रन्थ प्रकाशन समिति
जोधपुर

•

कम्पोज :
माणक ऑफसेट प्रिंटर्स
जोधपुर

•

मुद्रक :
अंटार्कटिका ऑफसेट
कलकत्ता

•

मूल्य : २००/-

सर्वाधिकार सुरक्षित : श्री चन्द्रप्रभ ध्यान निलयम्, इन्दौर

मुख्य संरक्षक

- श्री जैन श्वेताम्बर नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ, मेवानगर
- श्री मांगीलाल जी-चंचल कंवर कुम्भट के आत्मज श्री सुरेन्द्र-लीला, नवरतन-गुलाब, गौतम-विमला कुम्भट, जोधपुर
- श्रीमती झंकार देवी, निधियान कंवर की स्मृति में पारसमल, दलपत, कमल, लाभमल, पुष्पमल भंसाली, एवं
श्री शांतिलाल जी की स्मृति में कंचन देवी, टीकमचन्द, दिलीप, नवरतन, ललित जैन (हिरण)
जोधपुर

संरक्षक

- श्री भंवरलाल बाफणा, एबेक्स ट्यूब्स, जोधपुर
- श्री रावलचंद चौपड़ा, सेतरवा स्टील्स प्रा.लि., जोधपुर

सहसंरक्षक

- श्री किशोरराज सुनील कुमार सिंघवी, जोधपुर
- श्री पारसमल, रायचन्द, महावीर चन्द भंसाली, जोधपुर
- श्रीमती गुलाबदेवी मालू की स्मृति में श्री करणीदान पटवा, जोधपुर
- श्रीमती पुष्पा राजेन्द्र एस. मेहता, जोधपुर
- श्रीमती अकल कंवर प्यारेलाल जी की स्मृति में श्री कुन्दनमल जिंदाणी, जैसलमेर
- श्री हस्तीमल भंडारी, जोधपुर
- श्रीमती कमला बंशीलाल गांधी, जोधपुर
- श्री जबरचन्द, अशोक कुमार, मनोहर कुमार रांका, जोधपुर
- श्री चम्पालाल सालेचा, जोधपुर
- श्री घेवरचन्द कानूगा, जोधपुर
- श्री मंगलचन्द मोहनोत, जोधपुर
- श्री नेमिचन्द श्यामसुन्दर बैद मेहता, रायपुर
- श्रीमती कमला जवरीलाल टांटिया, मद्रास
- श्री मुल्तानमल जी की स्मृति में शंकरलाल धर्मीचन्द छाजेड़, बाड़मेर

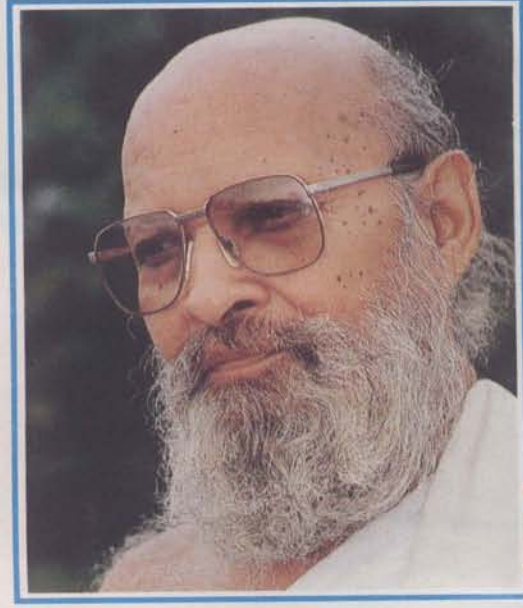
- श्री शुद्धराज लोढ़ा, जोधपुर
- श्री प्रयागचन्द सिंघवी, जोधपुर
- श्री मुकुनचन्द, जौहरीलाल पारख, जोधपुर
- श्री इन्द्रचंद मालू, जोधपुर
- श्री मुल्तानमल हुंडिया, जोधपुर
- श्री गुलाबचन्द गुलेच्छा, जोधपुर
- श्रीमती मधुबाई चांदमल कोठारी, जोधपुर
- श्री विजयराज कैलाशचन्द जैन, धाड़ीवाल, जोधपुर
- श्री हरखचंद जी भूधर जी मेहता, बम्बई
- श्री गौरव, सौरभ बच्छावत, जोधपुर
- श्रीमती प्रसन्न कंवर मोहनराज मेहता, जोधपुर
- श्री लेखराज मेहता, जोधपुर
- श्री गोवर्धन सिंह ढढ़ा, जोधपुर
- श्री कैलाश भंसाली, जोधपुर
- श्री मूलचन्द राहुल कुमार श्री श्रीमाल, जोधपुर
- श्री गिरधारी लाल डोसी, जोधपुर
- श्री बस्तीचंद आर. भंसाली, जोधपुर
- श्री बुधमल राजेन्द्र कुमार कुम्भद, जोधपुर
- श्री भंवरलाल कानूगा, जोधपुर
- श्री उच्छबराज, बजरंग राज, सुपारस, रमेश, महावीर भंडारी, जोधपुर
- श्री भैरुंदान जी की स्मृति में श्री भंवरलाल सुराणा, धूबड़ी/नागौर
- श्री सुमेरचन्द सिंघवी की स्मृति में श्री शांतिदेवी सिंघवी, जोधपुर
- श्रीमती गुलाबकंवर जौहरीमल जी की स्मृति में श्री उम्मेद सिंह भंसाली, जोधपुर
- श्री बंशीलाल जी कोचर, लूंगीवाला की स्मृति में श्रीमती सुशीलादेवी कोचर, अमृतसर



विश्व प्रसिद्ध जैन तीर्थ

1. राणकपुर
2. महावीर जी
3. नाकोड़ा
4. ओसियां
5. जैसलमेर
6. माउंट आबू
7. गिरनार
8. शंखेश्वर
9. तारंगा
10. महेसाणा
11. पालीताना
12. राजगृह
13. पावापुरी
14. सम्मेत शिखर
15. हस्तिनापुर
16. श्रवणबेलगोला

गणिवर श्री महिमाप्रभ सागर जी
शासन-प्रभावी स्थविर संत,
मानवता के लिए सर्वतोभद्र समर्पित



महोपाध्याय श्री ललितप्रभ सागरजी
सौम्यमूर्ति, ज्ञान-चेतना-सम्पन्न मनीषी संत,
प्रभावी प्रवचनकार एवं साहित्यकार



श्री महेन्द्र भंसाली
सिद्धहस्त छायाकार,
राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित,
एल्कोबेक्स, जोधपुर में सेवारत

प्रकाशकीय

‘विश्व प्रसिद्ध जैन तीर्थ : श्रद्धा एवं कला’ ग्रन्थ में भारत के चौदह जैन तीर्थों के उत्कीर्ण कलापक्ष को प्रस्तुत किया गया है। यह ग्रन्थ न केवल हमारी श्रद्धा का केन्द्र है, अपितु कला की दृष्टि से अपने आप में अनुपम बेमिसाल है। इसमें तीर्थकर परमात्मा की पावन प्रतिमाएं और तीर्थों के बाह्य स्वरूप को तो दिया ही गया है, तीर्थों के आन्तरिक वैभव को भी दर्शाया गया है।

तीर्थ और मन्दिर हमारी श्रद्धा के पूज्य केन्द्र हैं। हमारे पूर्वजों ने पालीताना, गिरनार, आबू, राणकपुर, जैसलमेर, नाकोड़ा, सम्मेशिखर, पावापुरी, श्रवणबेलगोला, शंखेश्वर, महावीरजी आदि तीर्थों में इतने भव्य मन्दिर बनवाये हैं कि देश-विदेश के पर्यटक देखते ही विस्मित हो उठते हैं। ओह, जैन मन्दिरों में कला का इतना जीवन्त रूप ! सचमुच हमारे मन्दिरों में पत्थर भी श्रद्धा और कला की भाषा बोलते हैं। ये मन्दिर हमारी भक्ति-भावना के जीवन्त महाकाव्य हैं।

सम्पूर्ण ग्रन्थ रंगीन है और मुद्रण-प्रकाशन अत्यन्त कलात्मक एवं सुन्दरतम हुआ है। कागज और छपाई की श्रेष्ठता के साथ प्रस्तुतीकरण की भव्यता का विशेष ध्यान रखा गया है। इस अनुपम ग्रन्थ का आलेखन महोपाध्याय ललितप्रभ सागर जी जैसे महामनीषी ने किया है और स्लाइड्स फोटोग्राफी सिद्धहस्त छायाकार श्री महेन्द्र भंसाली ने की है। पूज्य श्री ललितप्रभ सागर जी ज्ञान-चेतना सम्पन्न कर्मठ संत-पुरुष हैं। उनका वैदुष्य और ओजस्विता जग जाहिर है।

प.पू. गणिवर श्री महिमाप्रभ सागर जी के सन् १९९५ के जोधपुर-चातुर्मास के दौरान उनकी पावन प्रेरणा से प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रकाशन-कार्य उठाया गया।



ग्रन्थ-प्रकाशन के गुरुतर कार्य को पूरा करने के लिए जोधपुर में एक समिति गठित की गयी, जिसके संयोजक श्री पारसमल जी भंसाली हैं। समिति के अन्य सदस्य सर्व श्री धर्मोचन्द जी छाजेड़, इन्द्रचन्द जी मालू, कुंदनमल जी जिदाणी, करणीदान जी पटवा, (स्व.) बलवंतराज जी भंसाली, बंशीलाल जी गांधी एवं दलपत मल भंसाली हुए। सभी की सकारात्मक सेवाओं के कारण ग्रन्थ-प्रकाशन की अभिनव योजना पूर्ण हुई।

हम अपने मन्दिरों और तीर्थों की कलात्मक भव्यता को परिचय के साथ देश-विदेश तक पहुंचाएं, इसी उद्देश्य से ग्रन्थ प्रकाशित किया गया है।

इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ के प्रकाशन का श्रेय मुख्य रूप से जोधपुर जैन समाज को मिला है, इसका हमें गौरव है।

प्रकाश दफ्तरी

सचिव

श्री जितयशा फाउंडेशन

कैलाश भंसाली

सचिव

ग्रन्थ प्रकाशन समिति

भारतवर्ष श्रद्धा एवं शिल्प का खजाना है। श्रद्धा भारत की आत्मा रही है। श्रद्धा के अतिरेक का ही यह परिणाम है कि यहां ठौर-ठौर मन्दिर, विभिन्न आराधना-स्थल एवं स्मारक मिल जाते हैं। अनेक शिल्पांकित मन्दिर भूमिसात् हो जाने के बावजूद अतीत के आध्यात्मिक अवशेषों को देश ने सुरक्षित रखा है। मन्दिरों के निर्माण के प्रति तो यह देश आस्थावान रहा ही है, उनकी रक्षा के प्रति भी सजग-सक्रिय रहा है। उस राष्ट्र की श्रद्धा को कौन छू सकता है, जहां प्राणों को न्यौछावर करके भी मन्दिर-मूर्तियों की सुरक्षा की गई।

भारतवर्ष में मुख्यतः हिन्दु, जैन, बौद्ध, सिख, इस्लाम और ईसाइयत ने विस्तार किया है। इस्लाम और ईसाइयत बाहर से आए हैं, जबकि हिन्दु, जैन, बौद्ध व सिखों की तो जन्म-स्थली ही भारत है। इन धर्मों के प्रवर्तकों, धर्माचार्यों और सन्तों ने अपने आध्यात्मिक श्रम एवं दिशा-निर्देशों से इस राष्ट्र के धरातल का सिंचन-वर्धन और संरक्षण किया है। राष्ट्र उनके प्रति कृतज्ञ तो है ही, उनके संदेश ही वास्तव में राष्ट्र के सिद्धान्त बने हुए हैं। भगवान महावीर की अहिंसा, बुद्ध का मध्यम मार्ग, राम की मर्यादा इस राष्ट्र की परम आधारशिला है।

जैन धर्म का अभ्युदय भारत माता की गोद में हुआ है। इस देश के हर अंचल में इस धर्म की किलकारियां पहुंची हैं। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, असंग्रह और ब्रह्मचर्य के साथ सम्यक् दृष्टि, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र के नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक सिद्धान्तों पर आधारित इस धर्म ने राष्ट्र को हर दृष्टि से बहुत कुछ दिया है। राष्ट्र इस दृष्टि से जैन धर्म को अवदर दानी की संज्ञा देगा। भारत के इतिहास में कोई पृष्ठ तो क्या एक पंक्ति भी ऐसी नहीं मिलेगी जिससे जैनत्व के द्वारा राष्ट्र की गरिमा को आघात पहुंचा हो। जैनत्व के संदेश वास्तव में भारत के ही संदेश हैं।

जैनत्व की जन्म-स्थली होने के कारण भारत जैनों की पूज्य पावन पुण्य धरा है। यहां जैनों के समस्त तीर्थंकर एवं शलाका-पुरुष हुए। यहां जैन धर्म के तीर्थ और मन्दिर, शास्त्र और संगितियों का तो निर्माण और विनियोजन हुआ ही, जैन संतों ने यहां विचरण कर गांव-गांव में अहिंसा और शांति की अलख जगाई, वैराग्य और वीतरागता के निर्झर पहुंचाये।

प्रस्तुत ग्रन्थ में जैन तीर्थों के शिल्प को आकलित किया गया है। तीर्थ तो

सैकड़ों की संख्या में हैं, हमने उन तीर्थों को ही सम्मिलित किया है, जो श्रद्धा की दृष्टि से सर्वतोभद्र सर्वमान्य हैं और शिल्प की दृष्टि से जिनकी चर्चा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर होती है। कुछ तीर्थ ऐसे हैं जहां शिल्प अनूठा न भी हो, पर श्रद्धालुओं की श्रद्धा का वह केन्द्र है जैसे शंखेश्वर और नाकोड़ा। कुछ तीर्थ शिल्प की दृष्टि से अपने आप में अप्रतिम हैं और जिन मन्दिरों को देखने के लिए विदेशी भारत तक आते हैं जैसे—देल्वाड़ा, आबू, राणकपुर, जंमलमेर आदि। देल्वाड़ा को देखने के बाद तो व्यक्ति सारे संसार में घूम आये, शिल्प-कला का यह अनोखा रूप कहीं देखने को नहीं मिलेगा। यह मन्दिर भारत का ताज है।

पालीताना एक ऐसा तीर्थ है जो मन्दिरों का नगर कहा जाता है। जो महिमा हिन्दुओं में हरिद्वार की है, जैनो में वही पालीताना की है। जंमलमेर और ओसियां में प्राचीनतम कला के दर्शन होते हैं। श्रवणबेलगोला में संसार का एक आश्चर्य स्थापित है और वह है वहां अभ्युत्थित भगवान् बाहुबली की विशाल नयनाभिराम प्रतिमा।

प्रस्तुत ग्रंथ में हमने कुल चौदह तीर्थों को निदर्शित किया है। हमारा मुख्य दृष्टिकोण इन तीर्थों के शिल्प-पक्ष को उभारना था। वहां शिल्पकारों ने जिस बारीकी से नक्काशी की है, हमने हर सम्भव उसे छायांकित और प्रकाशित किया है। हमारे अजीज शिष्य श्री महेन्द्र भंसाली ने छायांकन में अपना सारा हुनर उड़ेल दिया है। उनकी छायांकन-साधना अपने आप में अनुपम अप्रतिम है।

ग्रन्थ का प्रकाशन यद्यपि एक दुरूह कार्य था, किन्तु अकेले जोधपुर ने ही इस कार्य को सुगम बना दिया। हमारे श्रद्धालुओं ने प्रकाशन के महत्त्व को समझा और सबके पारस्परिक सहयोग से जितयशा फाउंडेशन के तत्वावधान में ग्रन्थ परमपिता परमात्मा के श्रीचरणों में समर्पित किया जा सका।

स्व. आचार्य प्रवर श्री जिनकांतिसागरसूरि जी म. के हम कृतज्ञ हैं, जिनका हम पर अभय हस्त रहा। पूज्यप्रवर गणिवर श्री महिमाप्रभ सागर जी के म. प्रति हम प्रणत हैं, जिनकी सन्निधि में ग्रन्थ का लेखन-संयोजन हुआ। श्री कैलाश जी भंसाली, श्री प्रकाशचन्द जी दफ्तरी आदि महानुभावों की सक्रिय भूमिका साधुवादार्ह है। ग्रन्थ के कम्पोजिंग हेतु श्री मनीष चौपड़ा, संयोजन हेतु श्री नवीन कोठारी एवं मुद्रण हेतु श्री रंजन कोठारी की समर्पित सेवाएं अभिनन्दनीय हैं।

ग्रन्थ का आप निरीक्षण करें और एक बार इन तीर्थों की यात्रार्थ पधारे। ये तीर्थ और वहां की कला हमारी भारतीय एवं जैन संस्कृति की जीवंत अभिव्यक्ति है। इनकी यात्रा, पूजा और रक्षा हम सब का धर्म है।

ग्रन्थ हमारे देश की श्रद्धा एवं कला को जन-जन तक, देश-विदेश तक पहुंचाने में सहायक हो, लेखन-प्रकाशन के पीछे यही विनम्र उद्देश्य है।

सहयोगी जनों के प्रति निर्व्याज साधुवाद।

—महोपाध्याय ललितप्रभ सागर

अनुक्रम

राजस्थान

राणकपुर	—	:
महावीर जी (चांदनपुर)	—	13
नाकोड़ा	—	17
जैसलमेर	—	25
ओसियां	—	39
देलवाड़ा आबू	—	45

गुजरात

गिरनार	—	61
शंखेश्वर	—	73
तारंगा	—	81
महेसाणा	—	89
पालीताना	—	93

बिहार

राजगृह	—	111
पावापुरी	—	115
सम्पेत शिखर	—	119

उत्तरप्रदेश

हस्तिनापुर	—	131
------------	---	-----

कर्नाटक

श्रवणबेलगोला	—	137
--------------	---	-----



तीर्थ हमारी श्रद्धा एवं निष्ठा का सर्वोपरि मापदंड है। तीर्थ ही वे माध्यम हैं, जिनके द्वारा हम अतीत के अध्यात्म में झांक सकते हैं। चेतना की ऊर्जा, सघनता और वायुमण्डल में चेतना की जितनी तरंगें तीर्थों में मिलेंगी, धरती के अन्य किसी भी स्थान पर संभावित नहीं है।



संसार में ऐसा कोई धर्म नहीं है, जिसने तीर्थ की सार्थकता को अस्वीकार किया हो। हर धर्म तीर्थ से जुड़ा है। सच तो यह है कि तीर्थ से ही धर्म को जीवन मिलता है। वास्तव में तीर्थ हर धर्म का नाभिस्थल है, श्रद्धा-केन्द्र है। वह मनुष्य धन्य है जिसके शीर्ष पर किसी तीर्थ की माटी का तिलक हुआ है।

—श्री चन्द्रप्रभ





● राणकपुर

राणकपुर जैन धर्म की श्रद्धा-स्थली और भारतीय शिल्प का अनूठा उदाहरण है। मंदिर के शिल्प को देखने के लिए देश-विदेश से प्रतिदिन आने वाले हजारों-हजार दर्शकों के मुंह से पहली ही नजर में बोल फूट पड़ते हैं — वाह ! लाजवाब !! अप्रतिम !!!

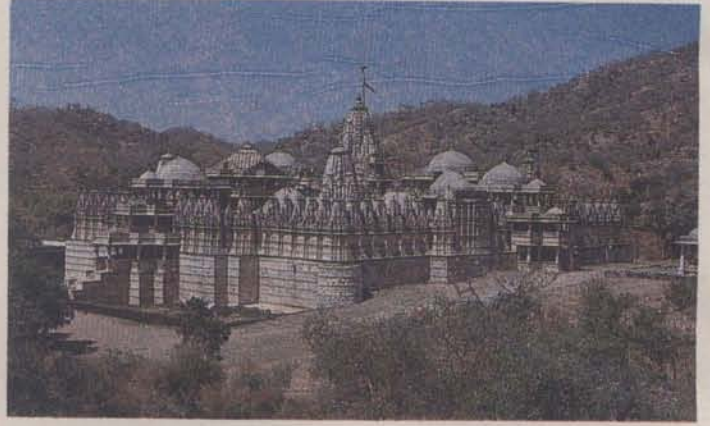
इस विशाल मंदिर में हर इंच पर शिल्प का निखार है, हर ओर कला का आश्चर्य और छैनी का चमत्कार है। परम पितामह परमात्मा श्री ऋषभदेव की पावन छत्र-छांह में इस भूमि का परम भाग्योदय हुआ, तीर्थ खूब फला-फूला, समय के उतार-चढ़ाव के बावजूद नींव से शिखर तक अखंड रहा। प्राकृतिक सौंदर्य के बीच स्थापित यह राणकपुर तीर्थ भारतीय शिल्प का नाभि-स्थल है।

राजस्थान की अरावली गिरीमाला की पहाड़ियों के बीच स्थित यह तीर्थ उदयपुर से ९० कि. मी. एवं फालना स्टेशन से ३३ कि. मी. दूर स्थित है। पत्थरों के अनगढ़ प्राकृतिक सौंदर्य के बीच इस मंदिर की वास्तु कला अपने वैभव के साथ मुखर है। हमारी भारतीय वास्तु-विद्या कितनी बढ़ी-चढ़ी थी और कलाकार कैसे सिद्धहस्त थे, पत्थर में कैसे प्राण-संचार कर देते थे, यह तीर्थ इसका साक्षी है। मंदिर के शिल्प-समृद्ध गुंबजों एवं स्तंभों को देखकर ऐसा लगता है, जैसे भारतीय स्थापत्य की मुद्रिका में जड़े हुए हीरे हों। मंदिर में प्रवेश करते ही लगता है मानो हम देवलोक में पहुँच गये हों।

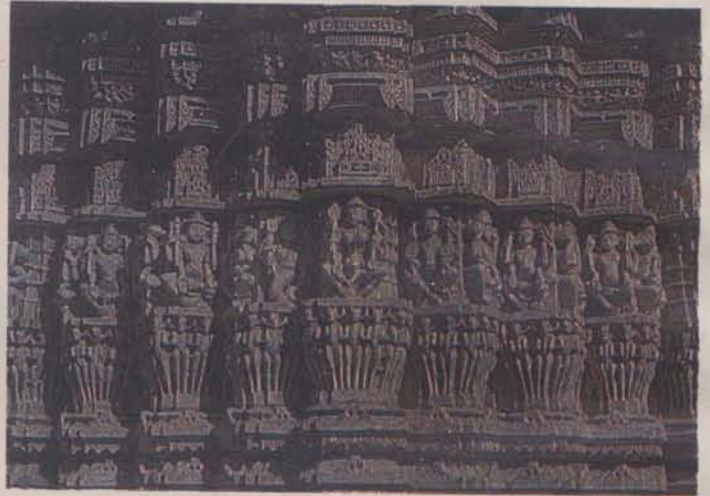
मंदिर के मुख-मंडप के प्रवेश-द्वार के पार्श्व में खड़े एक स्तंभ पर अंकित अभिलेख से ज्ञात होता है कि स्थापत्य कला एवं आध्यात्मिकता को एक साथ अभिव्यक्त करने वाले इस तीर्थ की स्थापना के प्रमुख स्तंभ महामंत्री धरणाशाह एवं शिल्प-निर्देशक देपा हैं। अभिलेख में राणा कुंभा के नाम का भी ससम्मान उल्लेख किया गया है, जिससे प्रतीत होता है कि कला एवं स्थापत्य के प्रश्रयदाता राणा कुंभा का भी इस मंदिर के निर्माण में योगदान रहा।

मान्यतानुसार धरणाशाह राणकपुर के निकटवर्ती 'नांदिया' गांव के निवासी थे। वे मेवाड़ के राणा कुम्भा के मंत्री थे। उनकी कार्य-क्षमता एवं राजनैतिक अनुभवों की प्रशंसा की गई है।

धरणाशाह की इच्छा थी कि वे प्रथम तीर्थंकर भगवान आदिनाथ का एक ऐसा मन्दिर बनवायें जो अपने आप में अनूठा हो। राणकपुर उनकी उसी इच्छा की आपूर्ति है। उन्होंने स्वप्न में परिदृष्ट 'नलिनी गुल्म' नामक देव-विमान की तरह ही मन्दिर का आकार-प्रकार बनाने का निश्चय किया।



राणकपुर : एक नजर



पार्श्वनाथ मंदिर : परिकर का एक भाग



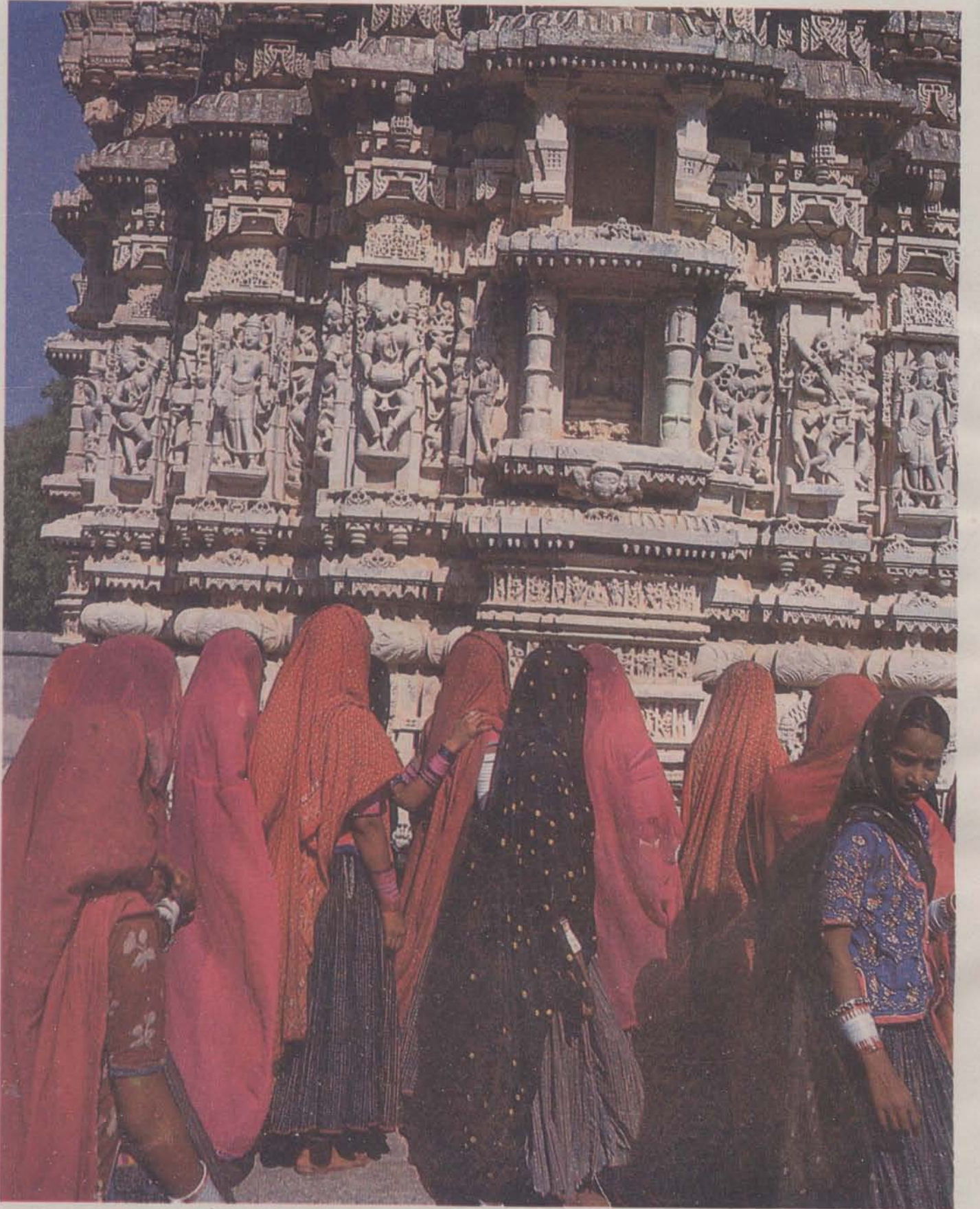
श्रद्धालुओं का अभिवादन करता गजराज



कल्प लता : खुदाई की बारीकी
 भगवान पार्श्वनाथ : सहस्राधिक नागफणों से अभिमंडित —







मंदिर-परिकर : अवलोकन करती ग्रामीण महिलाएं

धरणाशाह ने अनेक शिल्प-निदेशकों से मन्दिर के नक्शे बनवाये। प्रसिद्ध शिल्प-निदेशक देपा की कल्पना उन्हें न केवल अपने स्वप्नानुरूप लगी, वरन् उसमें शिल्पगत दूरदर्शिता की झलक भी मिली। देपा ने धरणा के सौजन्य से गूंगे पत्थरों को मुखर कर दिया। मन्दिर के लिए राणा कुम्भा ने भूखण्ड दिया था एवं मन्दिर निर्मित होने पर वहां नया नगर भी बसा दिया। धरणा ने इस भक्तिपूर्ण सहभागिता के लिए आभार व्यक्त करने हेतु राणा के नाम से नगर का नाम ही राणकपुर रख दिया।

मन्दिर का निर्माण कार्य विक्रम संवत् १४४६ में प्रारंभ हुआ। पचास वर्षों के निरंतर परिश्रम से मन्दिर का निर्माण - कार्य पूर्ण हुआ। मन्दिर सचमुच कला का आदर्श बन चुका था। धरणा की इच्छा मन्दिर को और अधिक कलापूर्ण बनाने की थी, किन्तु धरणाशाह काफी वृद्ध हो चुके थे। अतः विक्रम संवत् १४९६ में आचार्य सोमसुन्दर के कर-कमलों से इस भव्य मन्दिर की प्रतिष्ठा करवा दी गई।

राणकपुर का मन्दिर अरावली की पहाड़ियों से सुरक्षित है। पर्यटक दूर से ही इस मन्दिर का सलौना रूप देखकर मुग्ध हो उठता है। ज्यों-ज्यों वह मन्दिर के करीब पहुंचता है, उपशिखरों पर हवा में डोलायमान घंटियों की टंकारें उसके हृदय को आन्दोलित करने लग जाती हैं। ये टंकारें हमारी सोई चेतना को जाग्रत और आह्लादित करती हैं।

परमात्मा की अदृश्य शक्ति और कला की संसृति दर्शकों एवं श्रद्धालुओं को प्रांगण में सस्नेह आमंत्रण देती है। चाहे कोई परमात्मा पर विश्वास रखता हो या न रखता हो, किन्तु यहां आकर दर्शक अपने हृदय को भावाभिभूत पाता है। यद्यपि मन्दिर का संपूर्ण शिल्प जैन परिवेश में पल्लवित हुआ है, फिर भी मन्दिर-निर्माता ने रामायण और महाभारत के चुनिंदा दृश्यों का भी शिल्पांकन करवाया है।

मन्दिर के प्रवेश-द्वार पर दस्तक देने के पूर्व ही दर्शक को साम्प्रदायिक उदारता के जो उम्दा नमूने देखने को मिलते हैं, वह प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। मन्दिर की करीब पच्चीस सीढ़ी चढ़ने पर पर्यटक आकर्षित होता है पाषाण की शिल्पाकृत छत से। छत में पंचशरीरधारी एक वीर पुरुष की विशाल उभरती आकृति है। यह विशाल आकृति सम्भवतः महाभारत में वर्णित कीचक से सम्बन्धित है। जिसका सिर एक, पर शरीर पाँच थे। यह दृश्य अत्यन्त मनोहर और कौतुहल भरा है। इसी छत पर रामायण और महाभारत के अनेक घटनाक्रम अंकित हैं।

प्रवेश-द्वार पार करते ही अगल-बगल में दो प्रकोष्ठ बने हुए हैं, जिनमें जैन-तीर्थंकरों की प्राचीनतम प्रतिमाएँ हैं। एक प्रकोष्ठ में खड़ी एवं बैठी, पर विशाल प्रतिमाएँ हैं। कुछ प्रतिमाएँ तो उन आतताइयों के हाथों से गुजर चुकी हैं जो भारतीय सभ्यता और मान्यताओं को खण्डित करने में तुले हुए थे।

कुछ और सीढ़ियाँ चढ़ने पर मन्दिर का प्रथम प्रांगण है। जहाँ मन्दिर की रूक्ष कोरणी को तो देखा जा सकता है, मगर यहाँ खड़े होकर होने वाला विहंगावलोकन शिल्पकला की बेमिसालता को नजर



मूलनायक श्री आदिनाथ भगवान



नर-मादा घंटों में से एक

मुहैया करा देता है। मंदिर में जिधर भी नजर डालें, उधर खम्भे-ही-खम्भे दिखाई देते हैं। आदमी भौंचक्का रह जाता है एक साथ इतने खम्भों को देख, किन्तु उसकी यह विस्मय विमृग्धता उसे अहोभाव से सरोबार कर देती है।

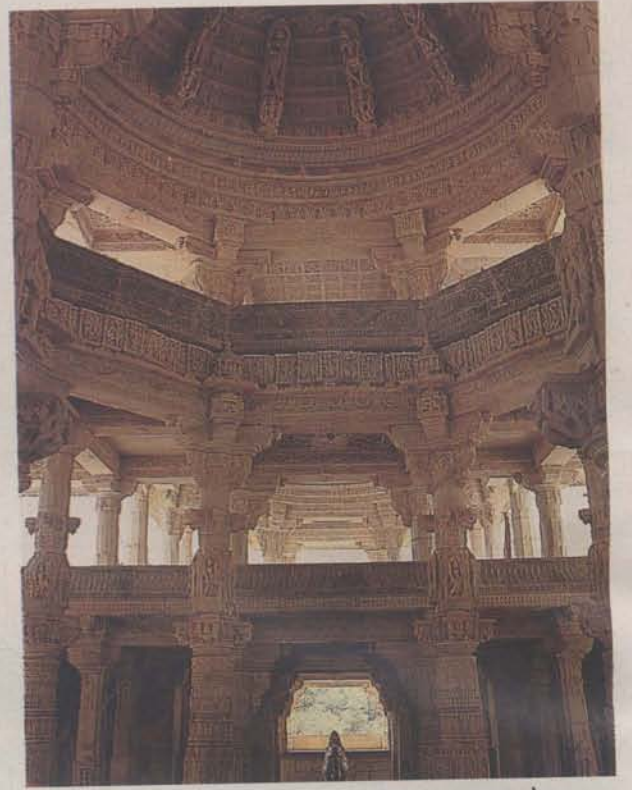
यहां इतने स्तंभ हैं कि किसी सम्राट के राजमहल में उतने माटी के दीये भी नहीं जलते रहे होंगे। शिल्प की उम्दा ऋचाओं को प्रकट करते यहां १४४४ स्तंभ हैं। हर स्तंभ कला का जीता जागता नमूना है, विशेषता यह है कि हर स्तंभ पर कला का नया रूप है, हर स्तंभ अपने आपमें शिल्प का स्वतंत्र आयाम है। संसार में अन्य ऐसी कोई भी इमारत नहीं है, जिसमें इतने संगमरमर के अमल-धवल उत्तुंग स्तंभ हों।

जब हम प्रांगण में खड़े-खड़े अपनी दृष्टि को छत की ओर ले जाते हैं तो ऊपर शिल्प का वह समृद्ध और जीवंत रूप दिखाई देता है, जिसकी तुलना में अन्य उदाहरण ढूँढ़ पाना बहुत मुश्किल है। इस छत पर बनी हुई है एक कल्पवल्ली-कल्पतरु की एक लता। यह मंदिर की कला का एक खूबसूरत नजारा है। स्थापत्य-कला के इतिहास में इसे महत्वपूर्ण स्थान जाता है। इस स्थान को मेघनाद मंडप कहा जाता है।

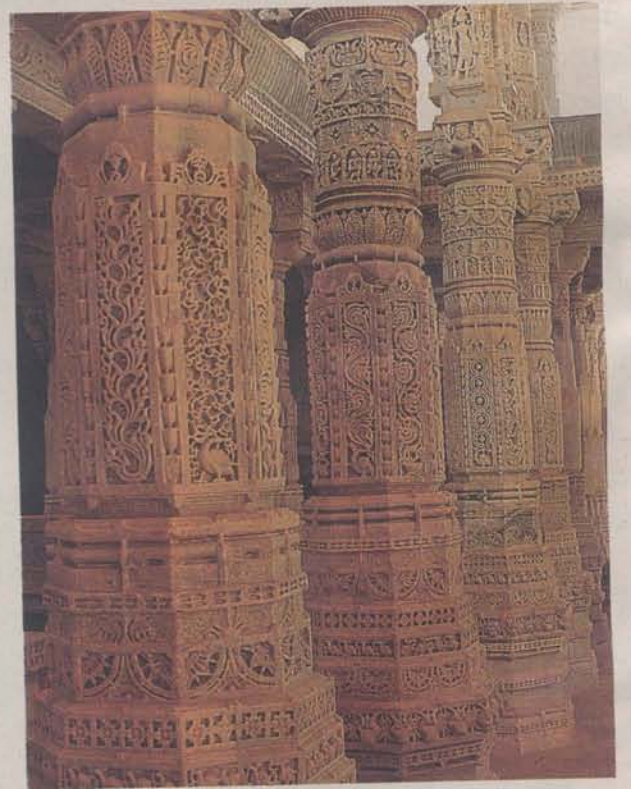
चार कदम आगे बढ़ते ही दर्शक स्वयं को छज्जेनुमा गुम्बज के नीचे पाता है। गुम्बजों में लटकते झूमर ऐसे लगते हैं मानो कानों में रत्न जड़े कुंडल लटकते हों। यहीं दोनों ओर दो ऐसे स्तम्भ हैं, जिनमें मन्दिर निर्मापक एवं शिल्पकार की छोटी मूर्तियां हैं। बायें स्तंभ में मंत्री धरणाशाह की प्रतिकृति है एवं दाहिनी ओर शिल्पी देपा की प्रतिकृति है।

यहां गर्भ-गृह के बाहर निर्मित तोरण, शिल्प का उत्कृष्ट उदाहरण कहा जा सकता है। मंदिर के प्रांगण में खड़ा व्यक्ति स्वयं को शिल्प समृद्ध भक्ति में उस समय तद् रूप कर लेता है जब उसकी आंखें मूल गर्भ-गृह में विराजित भगवान आदिनाथ की भव्य प्रतिमा का दर्शन करती है। यह प्रतिमा ६२ इंच की है एवं ऐसी कुल चार मूर्तियां चार दिशाओं में स्थापित हैं। संभवतः इसी कारण इस मंदिर का उपनाम चतुर्मुख जिनप्रासाद भी प्रसिद्ध हुआ है। गर्भगृह की आंतरिक संरचना स्वस्तिकाकार कक्ष के रूप में की गई है। मूल मंदिर के बाहर तीर्थ-रक्षक अधिष्ठाया देव की एक मूर्ति है, जो च मत्कारिक मानी जाती है। गर्भ-गृह के बाहर दो विशाल घंटे हैं, जिनमें नर और मादा का भेद है। घंटनाद से यह भेद ज्ञात होता है। घंटे से ऐसी आवाज आती है मानो ओम् की ध्वनि अनुगुंजित हो रही हो।

मूल मन्दिर की बाँयी ओर एक विशाल वृक्ष है जिसे रायण वृक्ष कहा जाता है। वृक्ष के नीचे तीर्थंकर आदिनाथ के चरण भी हैं। वास्तव में यह दृश्य जैनो के प्रसिद्ध तीर्थ शत्रुंजय की स्मृति दिलाता है। वृक्ष के पास ही सहस्रकूट नामक स्तम्भ है, जो अपूर्ण है। कहा जाता है इसकी पूर्णता के लिए अनेकशः प्रयास किये गये, पर पूर्ण न हो पाया। यह विशाल पट्ट/स्तम्भ जैसे ही एक निश्चित स्थान के ऊपर की ओर बढ़ता था, तत्काल टूट जाता था। सहस्रकूट के सम्मुख



मंदिर का आंतरिक दृश्य : कला का उत्तुंग वैभव



राणकपुर के स्तंभों में से कुछ



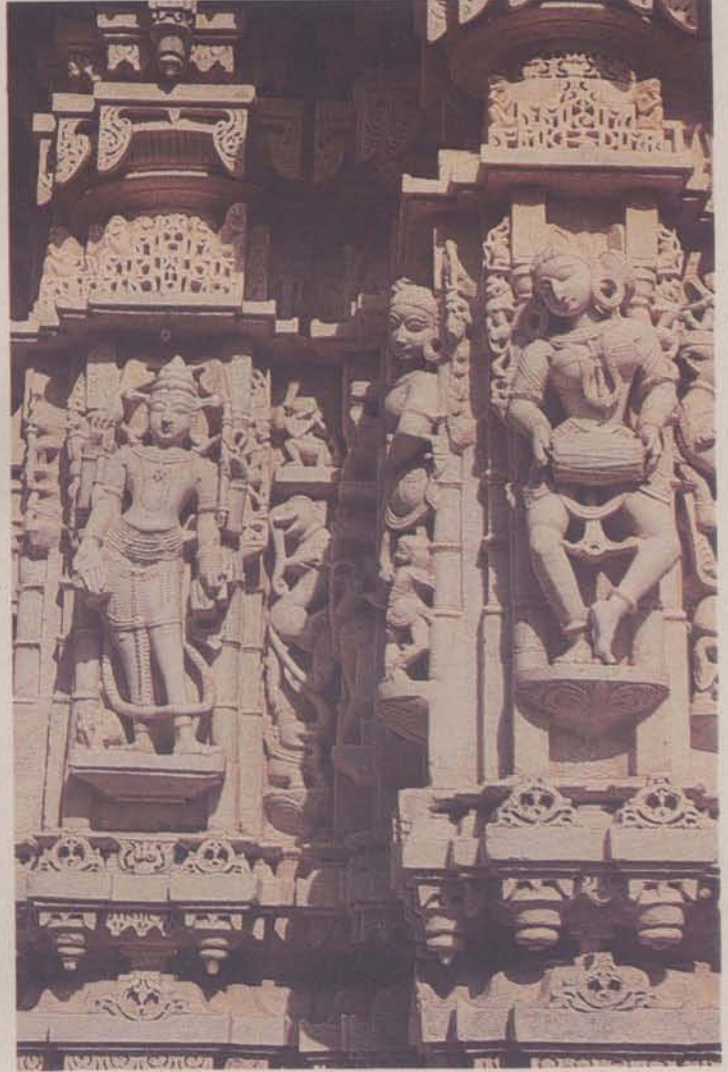
स्तंभावली



पार्श्वनाथ मंदिर : बाह्य परिकर का पृष्ठ भाग



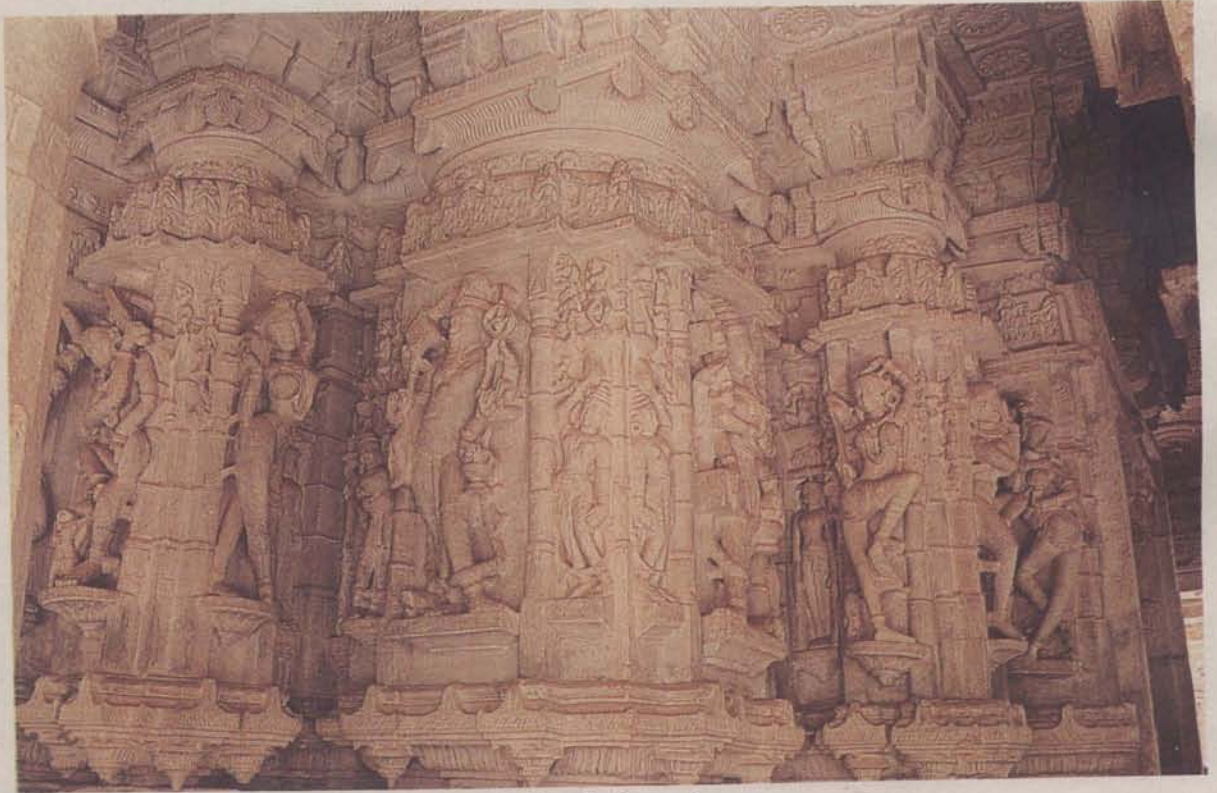
परिकर में देव नृत्यांगनाएं



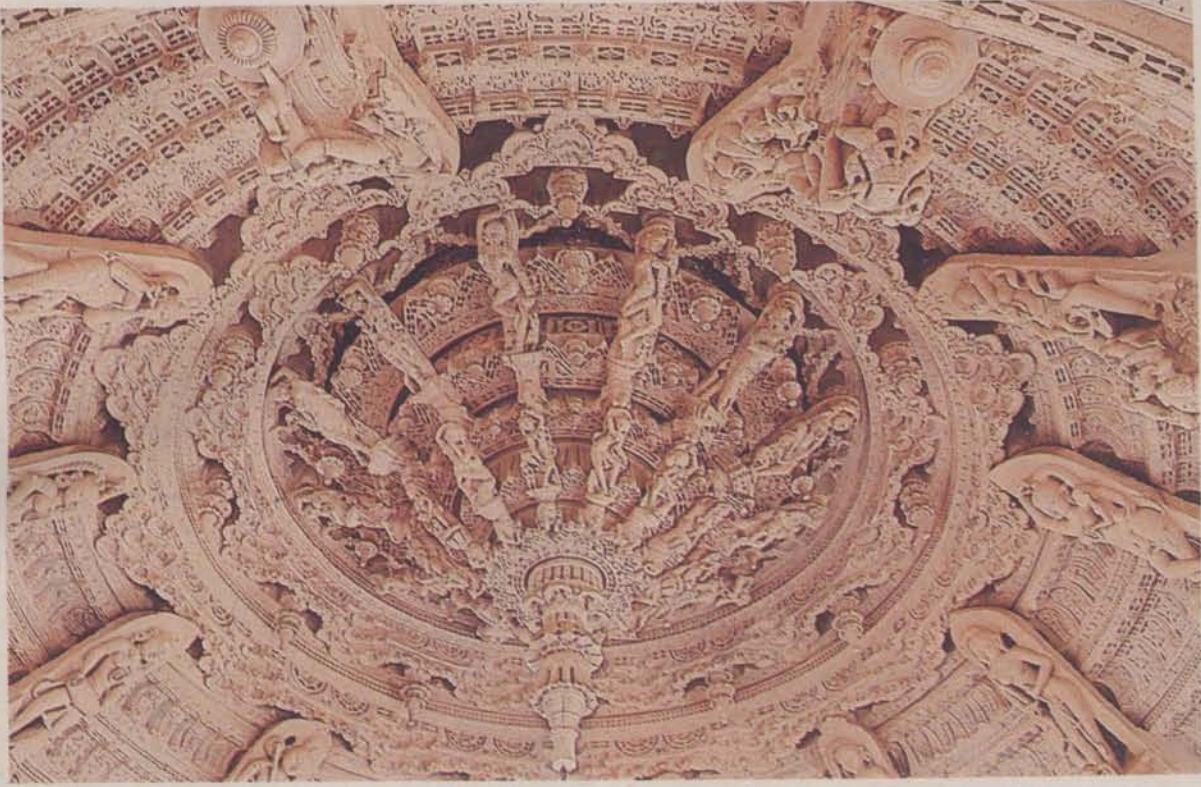
नृत्य-संगीत का एक रस



परिकर में नृत्यांगनाएं: कला की बेमिसाल प्रस्तुति



नृत्यांगनाओं से अभिमंडित परिकर का एक भाग



लटकते गुंबज : शिल्प का सौष्ठव



देवांगनाओं के नृत्य से अभिमंडित नयनाभिराम गुंबज

ही एक संगमरमर का विशाल हाथी है, जिस पर आदिनाथ की माता मरुदेवी की मूर्ति है। यह हाथी उस ऐतिहासिक प्रसंग की याद दिलाता है, जिसमें मरुदेवी, हाथी पर ही परम ज्ञान प्राप्त कर लेती है। यहीं पास में एक तलघर है। संकट काल में परमात्मा की प्रतिमाओं को इसी तलघर में छिपाकर रखा जाता था।

मूल गर्भ-गृह की दाहिनी ओर तीर्थंकर पार्श्वनाथ की एक ऐसी मूर्ति है जिसके सिर पर एक हजार नाग-फण हैं। ऐसी मूर्ति सम्पूर्ण भारत में एक ही है। इस मूर्ति की प्रमुख विशेषता यह है कि सभी सर्प एक दूसरे में गुंथे हुए हैं एवं उनका अन्तिम भाग अदृश्य है।

यहाँ परिकल्पित गुम्बजों में एक गुम्बज ऐसा भी है जिसे अगर ध्यान से न देखा गया तो दर्शक उस गुम्बज को मन्दिर की कला-समृद्धि में बाधक मानेगा। मन्दिर के ऊपरी भाग में निर्मित यह गुम्बद वास्तव में शंख-मंडप है। उसमें ध्वनि तरंग के विज्ञान को उपस्थापित किया गया है। गुम्बज के एक छोर में एक शंख बना हुआ है, जिसमें प्रसारित होने वाली अनुगूंज को सम्पूर्ण गुम्बज में तरंगित दिखाया गया है।

मंदिर के वर्गाकार गर्भगृह से अगर अध्ययन प्रारम्भ किया जाये तो मंदिर की एक सुस्पष्ट ज्यामितीय क्रमबद्धता दिखाई देती है। चूंकि मंदिर पश्चिमवर्ती पहाड़ी की ढलान में स्थित है। अतः मंदिर के अधिष्ठान के भाग को पश्चिम दिशा में पर्याप्त ऊंचा बनाया गया है। लगभग ६२ X ६० मीटर लंबे-चौड़े क्षेत्रफल के ढलान के चारों ओर की दीवार मंदिर की ऊंचाई की बाह्य संरचना में मुख्य भूमिका रखती है। मंदिर के चार प्रवेश-मंडप दो तल के हैं और तीन ओर की भित्तियों से घिरे हैं। मनोहारी प्रवेश-मंडपों में सबसे बड़ा मंडप पश्चिम की ओर है जो मुख्य प्रवेश मंडप है।

मन्दिर के परिकर में छः देव कुलिकाएँ हैं जिन पर छोटे-छोटे शिखर हैं। ये शिखर मन्दिर की शोभा में चार चाँद लगा रहे हैं। मन्दिर का शिखर तीन मंजिल का है जो झीनी-झीनी और सुकुमार कोरणी से मन्दिर की शोभा बढ़ा रहा है। मन्दिर के उत्तुंग शिखर पर लहराता ध्वज, संसार को शान्ति एवं प्रेम का सन्देश देता है। पूर्णिमा की चाँदनी में इस मन्दिर का अवलोकन और भी आह्लाद वर्धक है। यहां तीन मन्दिर और हैं, जिनमें दो तीर्थंकर पार्श्वनाथ के हैं एवं एक भगवान सूर्य देव का।

यदि मन्दिर के सम्पूर्ण परिसर को एक ही वाक्य में अभिव्यक्ति देनी हो, तो कहना होगा कि राणकपुर का मन्दिर पाषाण में मूर्त कल्पना है। इतिहास, शिल्प-कला एवं प्राकृतिक परिवेश इस स्थान को भारतीय पर्यटन एवं आराधना-स्थलों का सिरमौर साबित करते हैं। अमेरिका के विश्व-मान्य स्थपति लुई जूहान के अनुसार स्थापत्य-कला एवं आध्यात्मिकता की यह एक आश्चर्यजनक अभिव्यक्ति है।



परिकर में परिकल्पित देवांगना



कीचक : पंचदेही योद्धा



● महावीरजी (चांदनपुर)

श्री चांदनपुर महावीर जी जैन धर्म के अतिशय-क्षेत्रों में एक है। सवाई माधोपुर जिले में स्थित यह तीर्थ प्राकृतिक सुषमा से अभिमंडित है। नदी के तट पर निर्मित यह तीर्थ श्रद्धालुओं की श्रद्धा का केन्द्र है। श्रद्धा की दृष्टि से चांदनपुर महावीरजी को तीर्थों का हृदय-स्थल कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। जैन-धर्म की प्रमुख शाखा दिगम्बर परम्परा की यह पुण्यस्थली है।

तीर्थ के सन्दर्भ में यह मान्यता है कि तीर्थ-मंदिर के मूलनायक भगवान श्री महावीर की प्रतिमा भू-खनन से प्राप्त हुई। कोई कामदुहा-धेनु प्रतिदिन चांदनपुर गाँव के पास स्थित टीले पर अपना दूध झार आया करती थी। गौ-स्वामी और ग्रामवासियों के लिए ऐसा होना आश्चर्यजनक था। उन्होंने उस टीले की खुदाई की। जमीन में भगवान की प्रतिमा को प्रकट हुआ देख ग्रामीण भावाभिभूत हो उठे। प्रतिमा के प्रकट होने का समाचार सर्वत्र प्रसारित हो गया। जन-समुदाय दर्शन के लिए उमड़ पड़ा। लोगों की मंशाएं पूर्ण होने लगी और इस तरह से भगवान महावीर की इस अद्भुत चमत्कारमयी प्रतिमा को विराजमान करने के लिए एक भव्य मंदिर का निर्माण करवाया गया।

सतरहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी तक इस मंदिर का समय-समय पर कायाकल्प होता रहा है। शिल्प की दृष्टि से मंदिर का सौष्ठव कुल मिलाकर प्रशंसनीय है, किन्तु श्रद्धा की दृष्टि से महावीर जी एक अनुपम तीर्थ है। प्रतिवर्ष यहां लाखों दर्शनार्थी भगवान के श्रीचरणों में अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करने पहुंचते हैं।

जयपुर संभाग की नरेश-परम्परा भी इस तीर्थ के प्रति निष्ठाशील रही है। नरेशों द्वारा मंदिर की व्यवस्था के लिए अनुदान भी दिया जाता रहा है। यहाँ मानव-सेवा से सम्बन्धित कार्य भी सम्पादित होते रहे हैं।

प्रभु-प्रतिमा जिस स्थान पर प्रकट हुई है वहां संगमरमर की एक छत्री निर्मित है, जिसमें प्रतीक स्वरूप चरण-पादुका प्रतिष्ठित है। मंदिर की निर्माण-शैली रोचक और भव्य है। मंदिर के शिखर-समूह का दृश्य एक ही दृष्टि में मन को मोह लेता है।

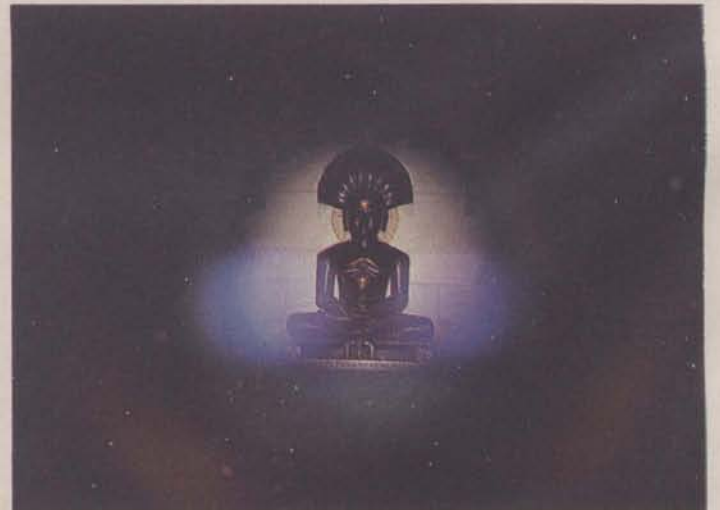
पूर्णिमा की चांदनी से नहाता चांदनपुर-तीर्थ मानवमात्र को पवित्रता और शीतलता का संदेश प्रदान करता है।



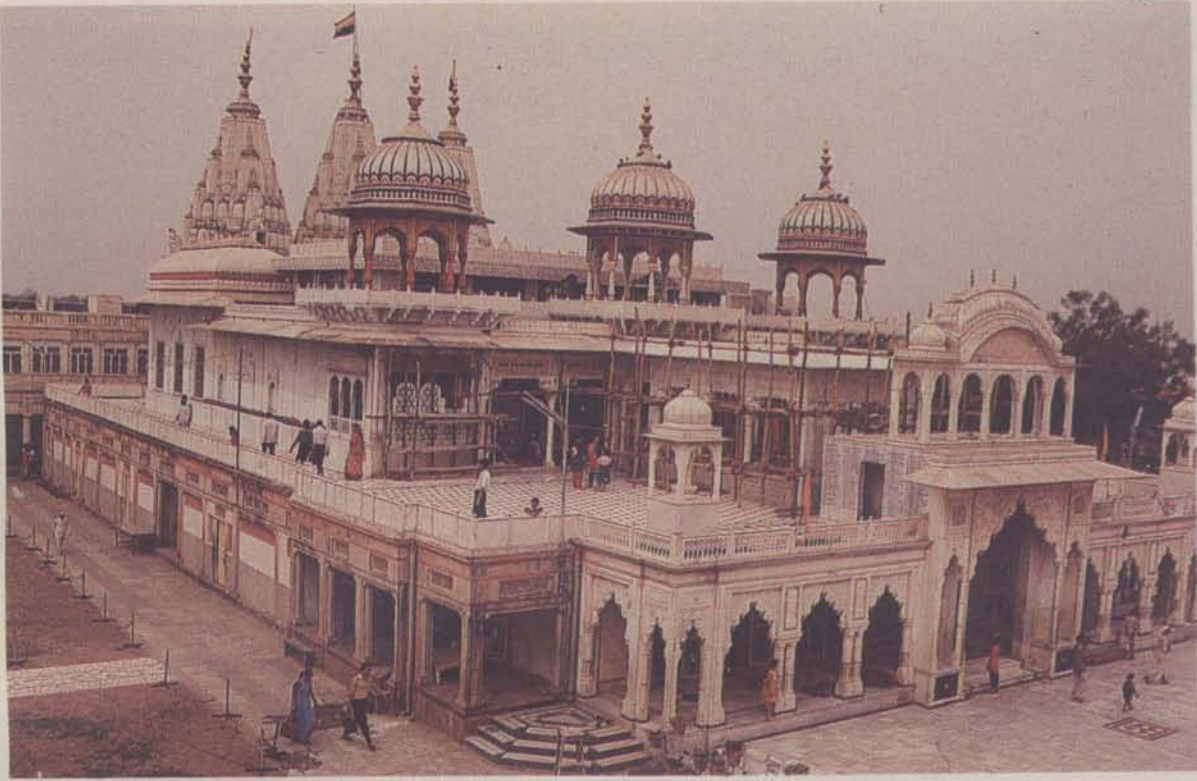
भगवान पार्श्वनाथ



कौच का स्वर्णिम मंदिर



आभा बिखेरती पावन प्रतिमा



मंदिर का विहंगावलोकन



शिखर एवं स्तम्भ



कीर्ति स्तम्भ



● नाकोड़ा

राजस्थान की मरुधरा पर निर्मित नाकोड़ा तीर्थ महिमा-मंडित पुण्यमयी गरिमा को लिये हुए है। यह सर्वमान्य बात है कि इस तीर्थ-स्थली पर श्रद्धालुओं द्वारा इतना कुछ न्यौछावर किया जाता है कि यहाँ की आय से न केवल अन्य छोटे-मोटे तीर्थों की व्यवस्था संचालित होती है, वरन् अनेकानेक विद्यालय, महाविद्यालय, चिकित्सालय, धर्मशालाएं भी निर्मित एवं प्रबंधित हो रही हैं। भगवान श्री पार्श्वनाथ एवं तीर्थरक्षक अधिष्ठायक श्री भैरवजी महाराज की महिमा इतनी जग-विख्यात है कि भक्तों द्वारा इन्हें 'हाथ-का-हजूर' और 'जागती-ज्योत' माना जाता है। यहाँ के हजारों चमत्कारी प्रसंग हैं। यहाँ के नाम से की गयी मनोकामना पूरी होती है। आम जनता की यह मान्यता है कि यहाँ पर चढ़ाया गया प्रसाद तीर्थ के संभाग के अन्तर्गत ही वितरित कर देना चाहिये। तीर्थ के परिक्षेत्र से प्रसाद को कहीं और ले जाना उचित नहीं माना जाता।

ऐतिहासिक सन्दर्भों के अनुसार नाकोड़ा का सम्बन्ध विक्रम पूर्व तीसरी शताब्दी में हुए नाकोरसेन नामक व्यक्ति से है। नाकोरसेन ने ही नाकोर नगर बसाया था, जो आगे जाकर नाकोड़ा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। नाकोरसेन ने यहाँ एक मंदिर बनवाया था, जिसकी प्रतिष्ठा आचार्य स्थूलिभद्र के करकमलों से सम्पन्न हुई थी।

नाकोड़ा तीर्थ पर कई महान् आचार्य एवं नरेश यात्रार्थ आए, जिनमें आचार्य सुहस्तिसूरि, सिद्धसेन दिवाकर, मानतुंगाचार्य, कालकाचार्य, हरिभद्रसूरि और राजा सम्प्रति तथा राजा विक्रमादित्य के नाम उल्लेखनीय हैं। जैनाचार्यों ने इन नरेशों के द्वारा इस तीर्थ का जीर्णोद्धार भी करवाया था। बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी में इस तीर्थ पर मुस्लिम शासकों के आक्रमण भी हुए, जिसमें मंदिरों को भारी क्षति पहुँची। पन्द्रहवीं शताब्दी में तीर्थ का पुनः निर्माण हुआ। अभी भगवान श्री पार्श्वनाथ की जो प्रतिमा प्रतिष्ठित है, उसका प्रतिष्ठापन सं. १४२९ में हुआ। एक मान्यता के अनुसार यह प्रतिमा नाकोर नगर से प्राप्त होने के कारण यह नाकोड़ा पार्श्वनाथ के रूप में प्रसिद्ध हुई, जबकि प्राचीन परम्परागत किंवदंती के अनुसार जिनदत्त नामक श्रावक द्वारा सिणधरी गाँव के पास एक सरोवर से इसे प्राप्त किया गया था और आचार्य श्रीउदयसूरि के करकमलों से इसकी प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई थी।

यहाँ के जो प्रगट प्रभावी अधिष्ठायक देव श्री भैरवजी महाराज हैं, उनकी स्थापना सं. १५११ में आचार्य कीर्तिरत्नसूरि द्वारा की गई थी। नाकोड़ा भैरव की स्थापना के बाद तीर्थ की निरंतर समृद्धि होती



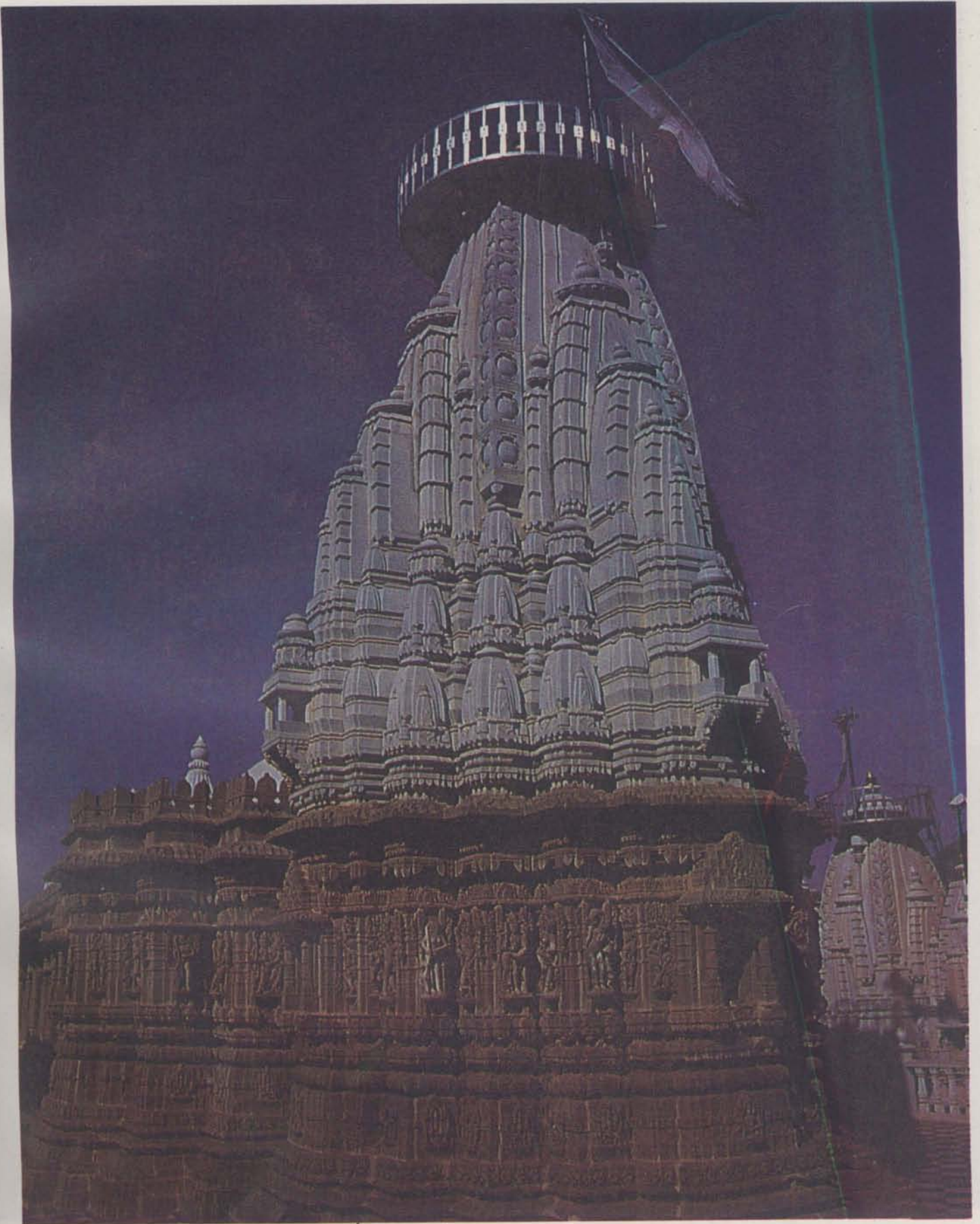
नाकोड़ा तीर्थ मूल मंदिर दर्शन



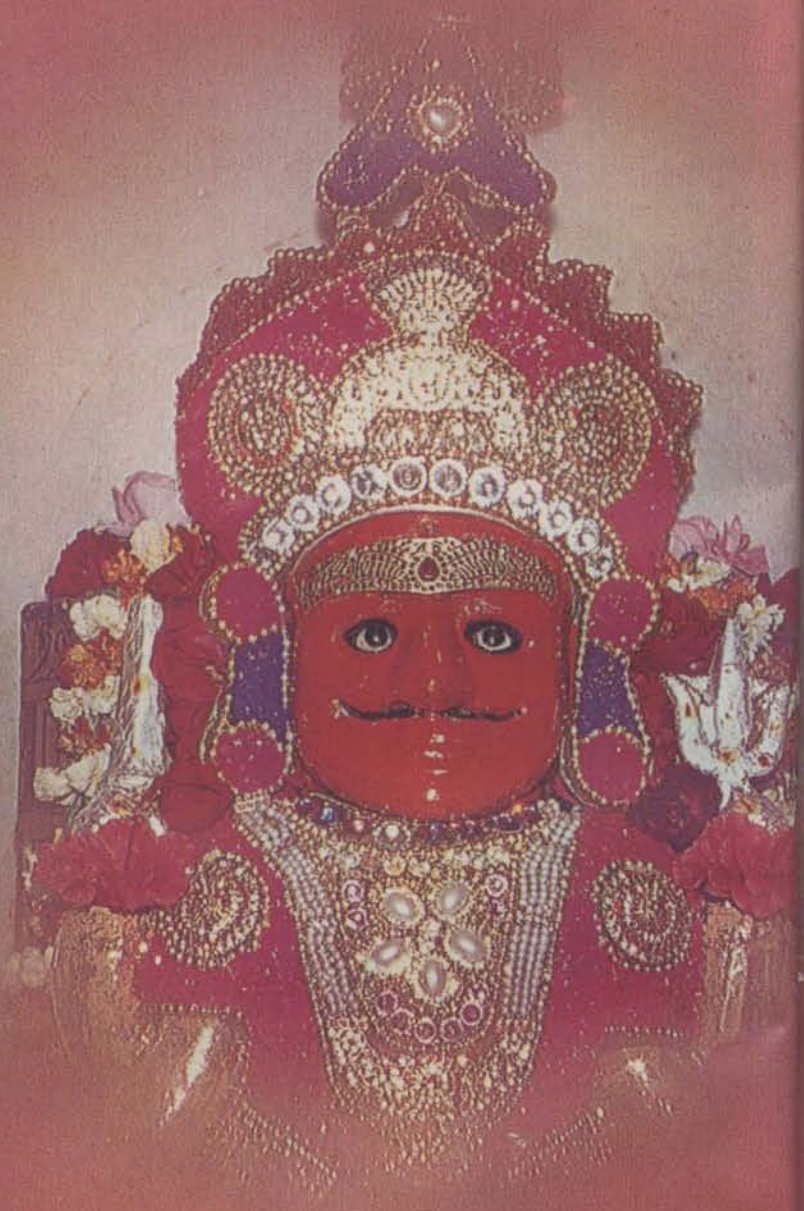
पर्वतावली की गोद में शांतिनाथ मंदिर की स्तंभावली



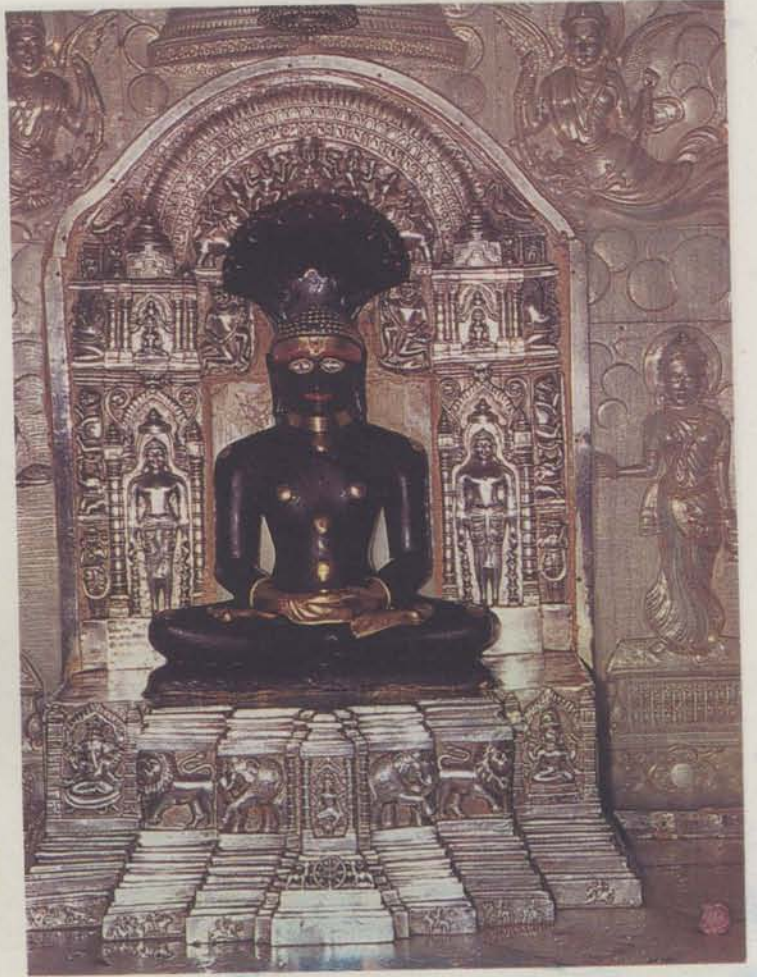
मंदिर के शिखरों में से एक



श्री आदिनाथ मंदिर: कलात्मक बाह्य परिकर



अधिष्ठायक देव श्री नाकोड़ा भैरव



तीर्थाधिराज भगवान श्री पार्श्वनाथ



शांति के दाता शांतिनाथ



श्री सिद्धचक्र मंदिर



शांतिनाथ मंदिर के स्तम्भ



आदिनाथ-मंदिर के परिकर में देव-युगल



परिकर में नृत्यांगना : कला की अद्भुत प्रस्तुति

रही। यहाँ के चमत्कार जनमानस में घर करते गये। देश-देशान्तर से श्रद्धालु आते रहे। समय-समय पर तीर्थ का नव-निर्माण और जीर्णोद्धार भी होता रहा है।

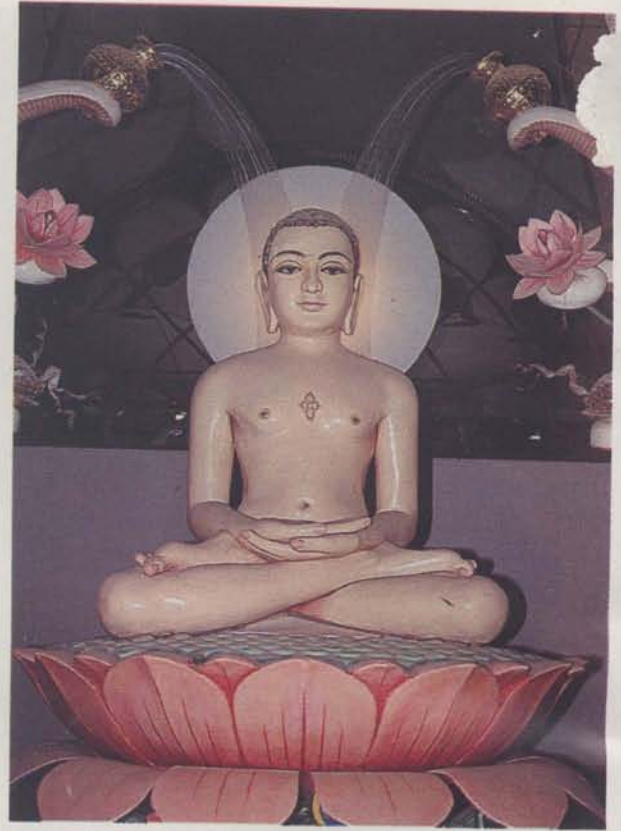
सतरहवीं शताब्दी तक तीर्थ पर जैनों की विपुल जनसंख्या रही, किन्तु बाद में यहाँ के निवासी नाकोड़ा के समीपवर्ती अन्य गाँवों तथा नगरों में जाकर बस गये।

भारत के कोने-कोने से प्रतिदिन सैकड़ों-हजारों यात्रिकों का यहां पहुँचना, अपने व्यवसाय तक में नाकोड़ा भैरव के नाम से भागीदारी रखना भैरव देव के प्रति अनन्य श्रद्धा का परिचायक है। पौष कृष्ण दशमी, जो भगवान पार्श्वनाथ की जन्म-तिथि है, को यहाँ विराट मेला आयोजित होता है।

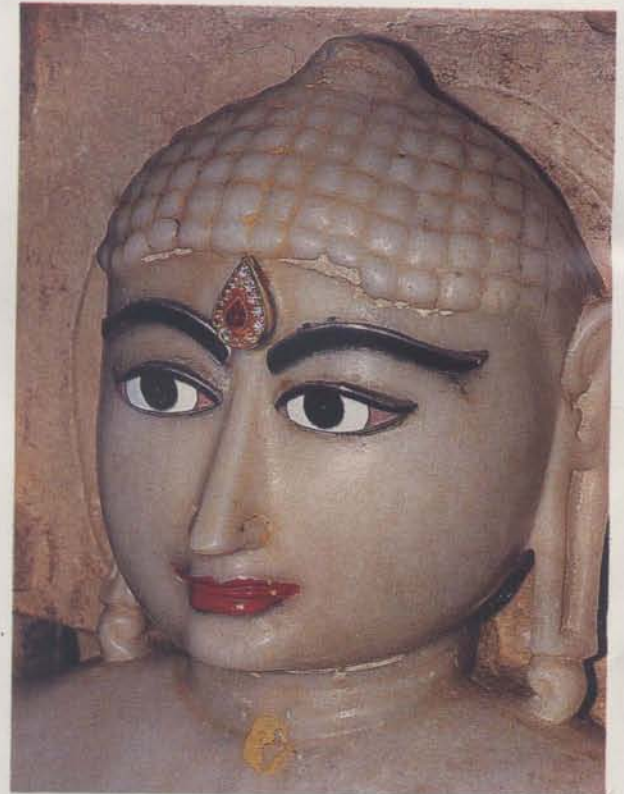
मूल मंदिर के आस-पास छोटे-बड़े कई अन्य मंदिर भी हैं। मंदिर के दायीं ओर सांवलिया पार्श्वनाथ की भव्य प्रतिमा विराजमान है। इस कक्ष में माँ सरस्वती, दादा जिनदत्त सूरि, आचार्य कीर्तिरत्नसूरि आदि की प्रतिमाएँ भी प्रतिष्ठित हैं। मूल मंदिर के पृष्ठ भाग में भगवान आदिनाथ का भव्य मंदिर है। इस मंदिर का परिकर अत्यन्त कलात्मक है।

मूल मंदिर के बाहर दायीं ओर श्री शांतिनाथ भगवान का भव्य मंदिर निर्मित है, जहाँ भगवान श्री पार्श्वनाथ एवं शांतिनाथ के पूर्वभव संगमरमर पर उत्कीर्ण हैं। मूल मंदिर के बाहर भगवान श्री नेमिनाथ की दो प्राचीन प्रतिमाएँ ध्यानस्थ मुद्रा में खड़ी हैं। प्रतिमा की सौम्य मुखाकृति को देखकर मन मंत्र-मुग्ध हो जाता है। इसी मंदिर में दादा जिनदत्त सूरि की प्राचीन चरण-पादुकाएँ प्रतिष्ठित हैं। मंदिर के पृष्ठ भाग में छोटा, पर खूबसूरत सिद्धचक्र मंदिर है। यात्रियों की सुविधा के लिए विशाल धर्मशालाएँ हैं, जहाँ हजारों यात्री एकमुश्त ठहर सकते हैं। विशाल भोजनशाला के अतिरिक्त तीर्थ के परिसर के बाहर महावीर कला मंदिर, दर्शकों का मन मोहता है, जहाँ भगवान् महावीर के जीवन से सम्बन्धित प्रेरणादायी एवं नयनाभिराम भव्य चित्रों का आकलन हुआ है।

चमत्कार और संकट-मोचन के लिए नाकोड़ा तीर्थ जन-जन का आराध्य केन्द्र है। नाकोड़ा भगवान् का स्मरण जीवन-पथ को निर्बाध और प्रशस्त करता है।



महावीर भवन में विराजित नयनाभिराम प्रभु महावीर



भगवान नेमिनाथ : ललित मुखमुद्रा



● लौद्रवा-जैसलमेर

जैसलमेर अपनी विशिष्ट कला के लिए विश्व-विख्यात है। यह वह कला-स्थली है, जहां केवल मंदिरों में ही नहीं, नागरिकों की हवेलियों पर भी इतनी सूक्ष्म कोरणी है कि देखते ही बनती है। और तो और सामान्य नागरिकों के मकान भी कला से सुसज्जित हैं। शहर को देखकर यों लगता है मानों यहां के निवासियों में कला के प्रति हृदय से प्रेम था। यहां मंदिरों के तोरण और गुम्बज कला के उत्कृष्ट नमूने हैं, वहीं सेठ साहूकारों के मकानों की छतें और झरोखे झीनी-झीनी खुदाई के बेहतरीन उदाहरण हैं।

न केवल शिल्प की दृष्टि से, वरन् प्राचीनतम ग्रन्थों के संग्रहालय की दृष्टि से भी जैसलमेर का नाम चर्चित रहा है। यहां के ज्ञान-भंडारों में हजारों-सैकड़ों वर्ष पूर्व आलेखित ताड़पत्रीय ग्रन्थ तक उपलब्ध हैं। इन ज्ञान-भंडारों में स्वर्ण-लिखित जैन शास्त्रों के अतिरिक्त प्राचीन शैली के चित्रों का भी अप्रतिम संकलन है। जैसलमेर का ज्ञान-भंडार विश्व के श्रेष्ठतम ज्ञान-भंडारों में एक गिना जाता है।

यद्यपि जैसलमेर की जनसंख्या आज इतनी विपुल नहीं है, किन्तु उल्लेख बताते हैं कि यहां किसी समय २७०० संध्रान्त जैनों के घर रहे हैं। संतों एवं कवियों ने जैसलमेर तीर्थ की महिमा और गरिमा बखानते हुए इसकी भरपूर प्रशंसा लिखी है।

जैसलमेर तीर्थ का निर्माण तेरहवीं शताब्दी में हुआ है। तीर्थाधिपति श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा १०५ से. मी. की है जिसकी प्रतिष्ठा आचार्य श्रीजिनकुशल सूरि के सुहस्ते सम्पन्न हुई थी। सं. १२६३ में आचार्य श्री जिनपति सूरि द्वारा यहां प्रतिष्ठा करवाने का उल्लेख मिलता है। आचार्य श्रीजिनराज सूरि के उपदेश से सं. १४५९ में मंदिर का पुनर्निर्माण एवं जीर्णोद्धार कार्य प्रारम्भ हुआ। सं. १४७३ में श्री जयसिंह नरसिंह रांका द्वारा आचार्य श्रीजिनवर्धनसूरि के करकमलों से पुनर्प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई।

इस मंदिर के अतिरिक्त किले पर सात मंदिर और हैं तथा शहर में पांच मंदिर हैं, जिनका निर्माण सोलहवीं-सतरहवीं सदी में हुआ है।

जैसलमेर में निर्मित यह मंदिर सूक्ष्म कोरणी की दृष्टि से एक सजीव स्थापत्यीय संरचना का उदाहरण है, जो जैनों के विशदीकरण तथा बहुविविधता की भावना के अनुरूप है। यहां के स्तम्भ, तोरण और प्रवेश-द्वार शिल्प की दृष्टि से अपने आप में एक आश्चर्य है। शिल्पकारों ने पाषाण का कोई भी अंश ऐसा नहीं छोड़ा है, जहां कला का कुछ-न-कुछ दर्शन न हो। जैसलमेर के मंदिरों में



शांतिनाथ मंदिर का शिखर: चीनी शैली में निर्मित



प्रवेश-द्वार के ऊपरी भाग पर शिल्प के संजीवित शिलालेख



शांतिनाथ की प्राचीन प्रतिमा

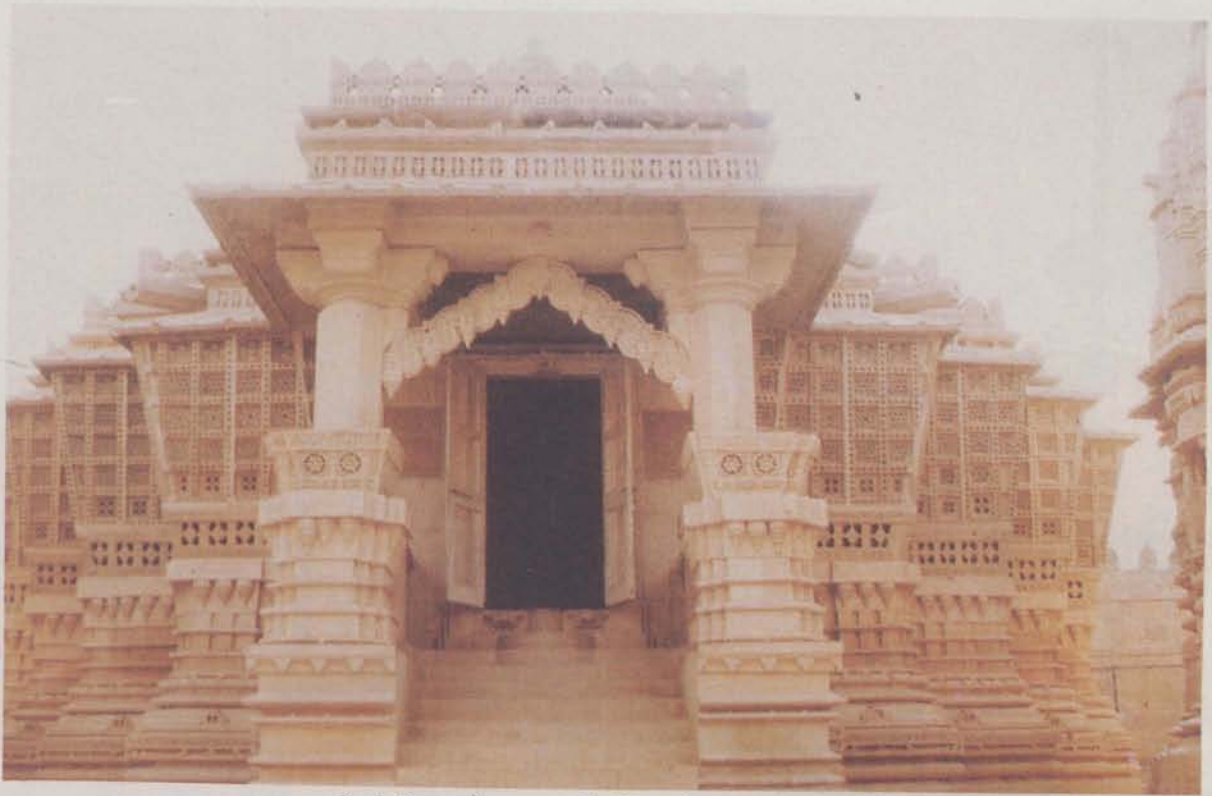


बालू की प्रतिमा-मोतियों का विलेपन, सं. २ की देन: मूलनायक श्री चितामणि पार्श्वनाथ

लोद्रवा तीर्थ के शिखर—







नलिनी विमान के आकार में मंदिर की नक्काशीदार दीवारें



स्तंभ और तोरण : यह है भारतीय कला



अंबिका देवी की भव्य प्रतिमा



कला की संजीवित प्रस्तुति

खम्भों-तोरणों-पुतलियों-नृत्य-नाटिकाओं के बेजोड़ नमूने उत्कीर्ण हैं। पश्चिमी राजस्थान की कला के जैसे शानदार नमूने यहां देखने को मिलते हैं, अन्यत्र कहीं नहीं हैं। यहां की कला निहारते ही दर्शकों को आबू-देल्वाड़ा, राणकपुर, खजुराहो की याद आ जाती है और वे एकटक देखने के लिए विवश हो जाते हैं। जैसलमेर का पत्थर बड़ा कठोर माना जाता है, इसके बावजूद शिल्पियों ने जितनी बारीक खुदाई की है उसे शिल्पकला के इतिहास की एक मिसाल कहा जाना चाहिये। मंदिर के अतिरिक्त पटवों की हवेली, सालमसिंहजी की हवेली, नथमलजी की हवेली आदि इमारतों में की हुई नक्काशी भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। उनकी चर्चा तो विदेशों तक में हुई है। वस्तुतः जैसलमेर वह स्थान है, जहां दर्शकों को तथा पर्यटकों को ठौर-ठौर पर कला के जीते-जागते नमूने देखने को मिलते हैं। पीले पत्थरों से निर्मित मंदिरों के शिखर स्वर्ण-शिखर-सा आभास देते हैं।

जैसलमेर के वृहत् ग्रन्थ भंडार में प्रथम दादा श्रीजिनदत्त सूरि की ८०० वर्ष प्राचीन चादर आदि भी सुरक्षित है, जिन के सन्दर्भ में यह मान्यता है कि दादा गुरुदेव की अंत्येष्टि के समय ये उपकरण अग्निसात् न हो पाये। श्रद्धालुओं के लिए यह एक महान् चमत्कार था। गुरु भक्तों ने इस चादर को ग्रन्थ-भंडार में सुरक्षित रखा, जिसे



श्री लोद्रवा पार्श्वनाथः सुंदर परिकरयुक्त



आठवीं सदी में निर्मित शालीनतम तोरण-द्वार



जैसलमेर के पीले पत्थर में परिकरयुक्त एक प्रतिमा



गेंद पर नृत्य करती देवांगनाएं



संभवनाथ मंदिर में देवकूलिकाएं: नृत्य एवं संगीत का सामंजस्य



ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, अग्नि, शक्ति की खंभों में उकेरी गई कलाकृतियां



पाषाण में नाट्यकला की संस्तुति

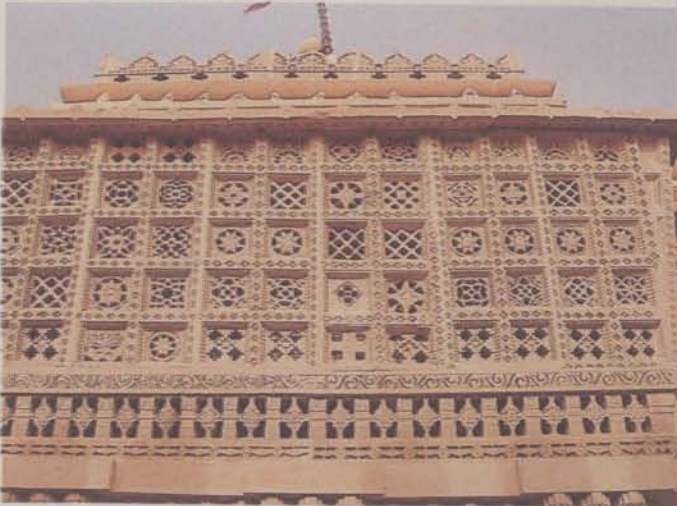
दर्शक आज भी विस्मित भाव से देखते हैं ।

जैसलमेर में आचार्य श्रीजिनवर्धनसूरि, आचार्य श्रीजिनचन्द्र सूरि, महोपाध्याय समयसुन्दर आदि अनेक प्रभावक संतों का आगमन हुआ । यहां के सेठ श्री थीरूशाह, संघवी श्री पांचा, सेठ श्री संडासा और जगधर आदि श्रेष्ठिवरों के सक्रिय सहयोग से जैसलमेर आज सारे देश की धरोहर बन चुका है । किसी समय जैसलमेर की यात्रा को अत्यंत दुर्गम माना जाता था, पर अब वैसी बात नहीं है । यहां हर दिन सैकड़ों- हजारों पर्यटक शिल्पकला का निरीक्षण करते और आनन्द लेते हुए दिखाई दे सकते हैं ।

लोद्रवपुर

लोद्रवपुर जैसलमेर से १५ और अमरसागर से १० कि. मी. की दूरी पर स्थित है । किसी समय यह लौद्र राजपूतों की राजधानी का बड़ा वैभवशाली नगर रहा है । यही वह स्थली है, जहां भारत का प्राचीनतम विश्वविद्यालय स्थापित था, किन्तु जैसलजी और रावल भोजदेव, जो एक दूसरे के काका-भतीजा थे, के पारस्परिक वैमनस्य का यह परिमाण हुआ कि लौद्रवपुर आज ध्वंसावशेष के रूप में बचा हुआ है । जैसलजी ने मुहम्मद गोरी से सैनिक संधि करके भोजदेव रावल की राजधानी लौद्रवा पर चढ़ाई की । भोजदेव और हजारों योद्धा वीरगति को प्राप्त हुए । गोरी के सैनिकों ने लौद्रव को खंडहर ही कर दिया । लोद्रव मंदिर को भी क्षति पहुंची । जैसलमेर जैन-तीर्थ में जो श्री पार्श्वनाथ की प्रतिमा विराजमान है, वह वास्तव में वही प्रतिमा है जो युद्ध से पूर्व लौद्रवपुर तीर्थ में विराजमान थी ।

थीरूशाह ने इस महामंदिर का पुनः निर्माण करवाया । मूलनायक के रूप में आज जो प्रतिमा यहां अधिष्ठित है, उसके बारे में यह कहा जाता है कि मुल्तान की ओर जा रहे किन्हीं श्रेष्ठ शिल्पियों को यह स्वप्न आया कि वे जो मूर्ति मुल्तान ले जा रहे हैं, वह लोद्रवपुर तीर्थ के लिए प्रदान की जाये । थीरू शाह ने शिल्पियों को प्रचुर पुरस्कार देकर प्रतिमा स्वीकार की थी । एक अन्य मान्यता के अनुसार लौद्रवपुर तीर्थ का जीर्णोद्धार करवाकर थीरू शाह पालीताना तीर्थ की



लोद्रवा की जालियां : महीन नक्काशी





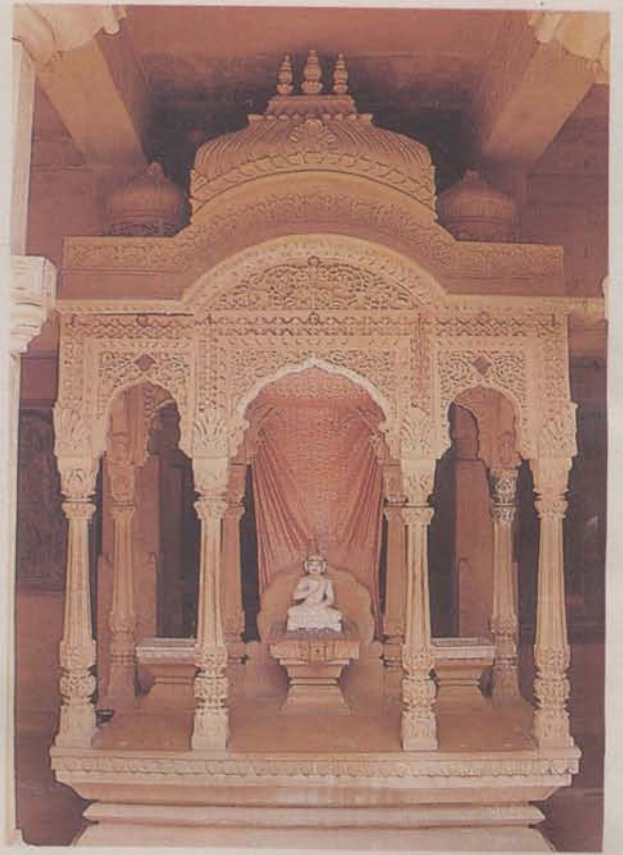
कांच पर सोने का काम : कमनीय कलाकृतियां

यात्रा के लिए यात्रा संघ निकाला था। लौटते हुए पाटन नगरी से यह प्रतिमा लेकर आये थे। जिस रथ में यह प्रतिमा आयी थी, वह रथ आज यहां सुरक्षित है। जबकि कुछ लोग यह मानते हैं कि यह रथ मुल्तान के मुसाफिर शिल्पकारों का है। वि. सं. १६७३ मिगसर शुक्ला द्वादशी के दिन आचार्य श्री जिनराजसूरि के करकमलों से प्रतिष्ठा होने का शिलालेख उत्कीर्ण है। यहां विराजित मूलनायक श्री सहस्रफणा चिंतामणी पार्श्वनाथ की प्रतिमा देश में वह प्राचीनतम विरल प्रतिमा है, जो सहस्रफणा से अभिमंडित है।

यद्यपि जीर्णोद्धार का कार्य अभी निकट में ही सम्पन्न हुआ है, किन्तु इस तीर्थ को बनाने और बचाने का असली श्रेय थीरू शाह को जाता है। लौद्रवपुर के आस-पास दूर-दराज तक हजारों इमारतों के ध्वंसावशेष प्राचीन इतिहास की याद दिलाते हैं। इन खंडहरों के बीच शान्त वातावरण में स्थापित यह सुरम्य तीर्थ रेगिस्तान के रेतीले टीलों में खिले हुए किसी मनवांछा पूरक कल्पवृक्ष की तरह है।

मंदिर के परिक्षेत्र में शिल्पकला के अद्भुत नमूने देखने को मिलते हैं। मंदिर का प्रवेश-द्वार तथा परिसर बेहद सुंदर है। मंदिर के शीर्ष स्थल पर एक ऐसे कल्पवृक्ष का अवशेष है, जिसके बारे में कहा जाता है कि यह कल्पवृक्ष है। प्रबंधकों ने इस वृक्ष की सुरक्षा और सुन्दरता के लिए इस पर आकर्षक खोल भी चढ़ा रखा है। यहां के स्तम्भ, छत और शिखर भी बारीक नक्काशी के अनूठे नमूने हैं।

मंदिर के अधिष्ठायक देव भी अत्यन्त चमत्कारी और प्रभावशाली माने जाते हैं। आम यात्रियों तथा पर्यटकों के अलावा यहां भारतीय सेना के बड़े-बड़े कमांडो भी प्रार्थना और पूजा के लिए आते हैं। यहां के अधिष्ठायक के नाम से की गयी मंसा पूरी होने की भी लोकमान्यता है। यहां नागराज भी दर्शन देते हुए दिख जाते हैं।



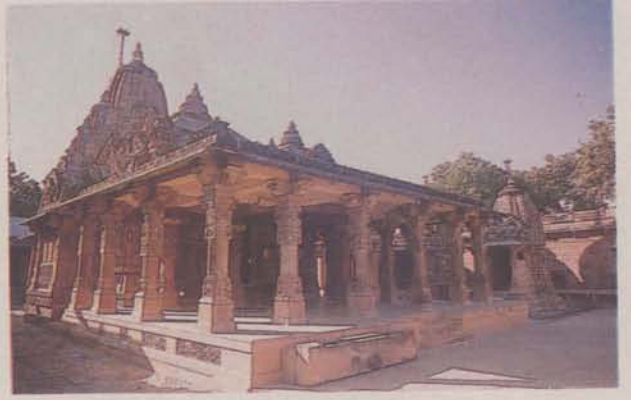
कुशल गुरु की कलात्मक छत्री



जलनिकासी का कलात्मक द्वार



कल्पवृक्ष



● ओसियां

विशिष्ट शिल्प-लालित्य के कारण ओसियां तीर्थ कलात्मक मंदिरों में सदैव चर्चित रहा है। कठोरतम पाषाणों में शिल्पांकित यहां की वस्तुकला तो विख्यात है ही, मंदिर की अपनी विशालता और उसका विशिष्ट सौन्दर्य भी उल्लेखनीय है। मंदिर के मूलनायक भगवान श्री महावीर का मंदिर राजस्थानी वास्तुकला की बेमिसाल प्रस्तुति है। मुख्य मंदिर और उसकी मूल देव कुलिकाएं प्रारम्भिक जैन स्थापत्य कला की संस्तुति करते हैं।

इस तीर्थ से सम्बन्धित ऐतिहासिक तथ्यों का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि इसका प्राचीन नाम उपकेश पट्टण, उरकेश, नवनेरी आदि था। चौदहवीं शताब्दी के गच्छ पट्टावली से ज्ञात होता है कि विक्रम की चार शताब्दी पूर्व यहां आचार्य रत्नप्रभ सूरि का आगमन हुआ था एवं वहां के राजा उपलदेव एवं मंत्री उहड़ ने उनसे प्रतिबोधित होकर जैन धर्म स्वीकार किया था। उल्लेख बताते हैं कि राजा उपलदेव ने तब इस मंदिर का निर्माण करवाया था नगर का क्षेत्रफल विस्तृत था और देश के समृद्धशाली नगरों में यह एक गिना जाता था।

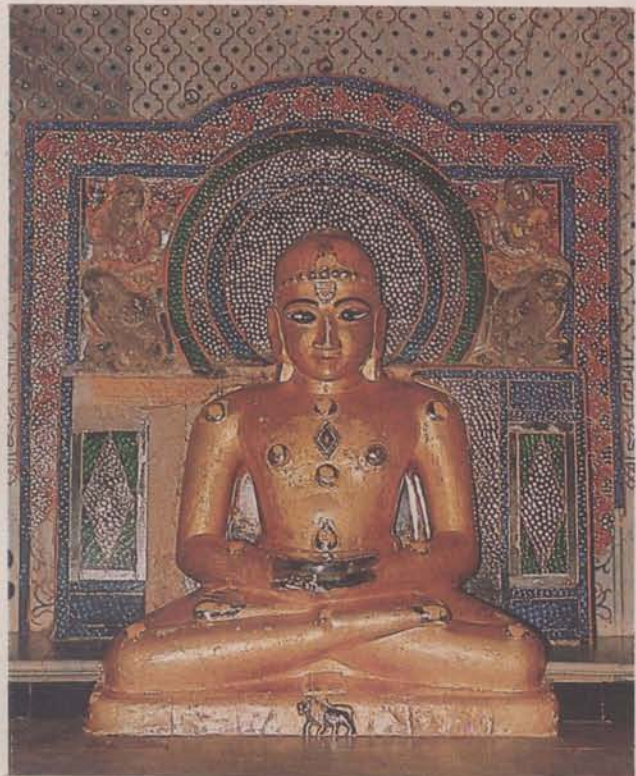
एक अन्य उल्लेख से ज्ञात होता है कि मंदिर में विराजमान मूलनायक श्री महावीर स्वामी की प्रतिमा भूगर्भ से प्राप्त हुई थी जिसकी प्रतिष्ठा सं. १०१७ माघ कृष्ण अष्टमी के दिन हुई थी। पुराविदों के अनुसार यहां की शिल्पकला लगभग ८वीं सदी की है।

विविध संदर्भों के अध्ययन करने से ऐसा लगता है कि भगवान महावीर के निर्वाण के ७० वर्ष के पश्चात यह नगरी बस चुकी थी और इस मंदिर का निर्माण भी लगभग इसी काल में हुआ था एवं आठवीं शताब्दी में इसका जीर्णोद्धार हुआ था।

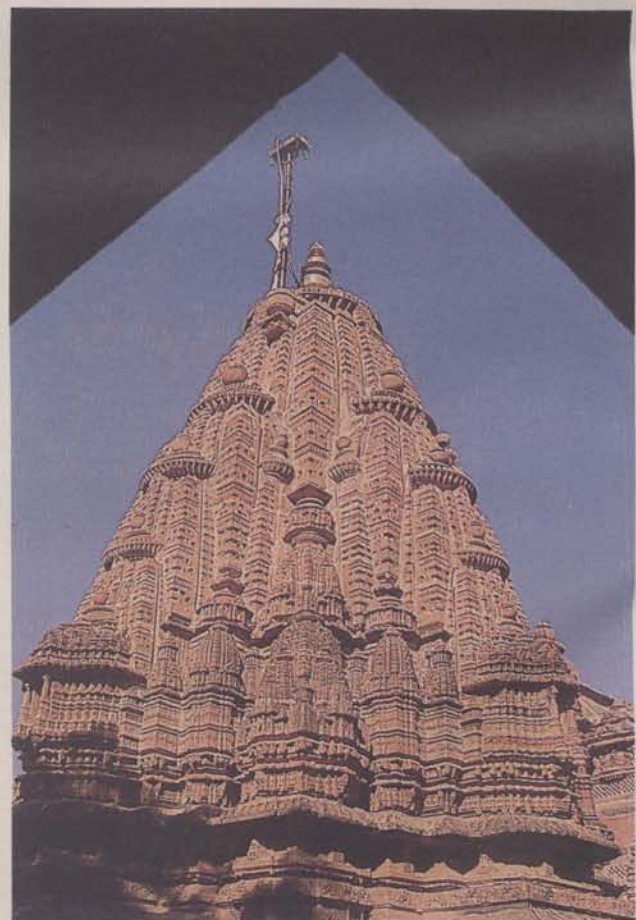
जैन समाज के प्रमुख अंग ओसवाल जाति का उद्भव भी ओसियां से ही हुआ था।

पुरातत्त्वविदों के अनुसार ओसियां प्रारंभिक मध्ययुगीन कला और स्थापत्य का एक प्रसिद्ध स्थान है। यहां के कुछ मंदिर आठवीं सदी के निर्मित हैं एवं कुछ मंदिर लगभग ग्यारहवीं सदी के। तीर्थ के मूलनायक तीर्थंकर श्री महावीर हैं। उनकी पद्मासनस्थ, स्वर्ण वर्णीय ८० से.मी. की प्रतिमा यहां विराजित है। मूल मंदिर का निर्माण आठवीं सदी का मान्य है। मूल मंदिर उत्तराभिमुख है।

द्वार मंडप के पास एक कलात्मक तोरण निर्मित है जिसका निर्माण सं. १०१६ में हुआ था। गर्भगृह के दोनों ओर तथा पीछे की



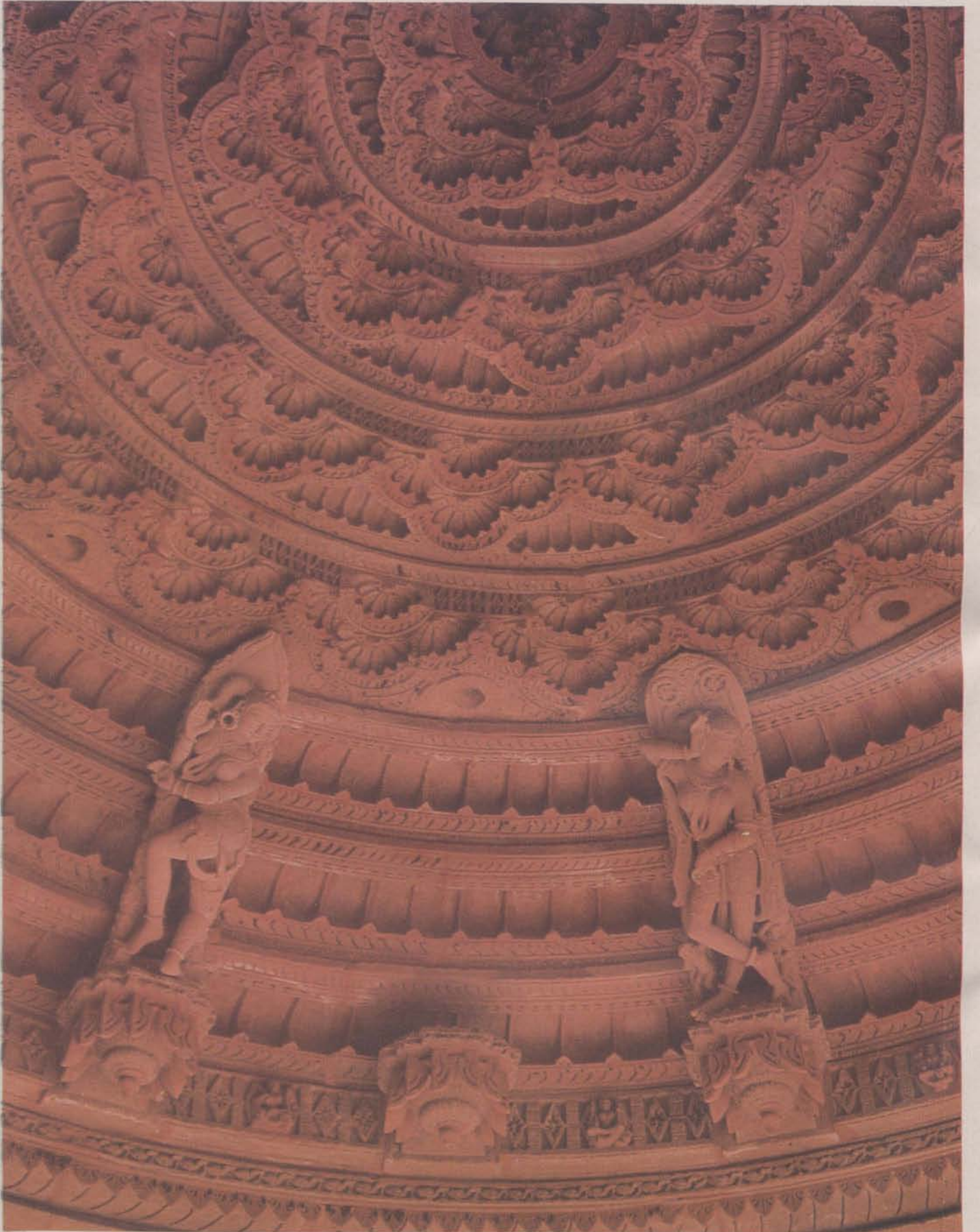
भगवान महावीर : ओसियां तीर्थ के अधिनायक



मंदिर का भव्य शिखर



तीर्थ का स्वागत द्वार



गुंबज : राजस्थान की उद्भव कला का नमूना



शिल्प अभिमण्डित मंदिर का एक कलात्मक भाग

ओर एक आच्छादित वीथी निर्मित है। गर्भगृह वर्गाकार है। इसमें भद्र, प्रतिरथ तथा कर्ण- तीनों का समावेश किया गया है। मंदिर में वेदी बंध के कुंभ देव कुलिकाओं द्वारा अलंकृत है जिनमें कुबेर, गज-लक्ष्मी तथा वायु आदि की आकृतियां दर्शक को अपनी ओर आकर्षित करती हैं। देव कुलिकाओं पर दिग्पालों की कलाकृतियां भी निर्मित हैं। गर्भगृह के भद्रों को उच्चकोटि के कलात्मक झूमरों युक्त उन गवाक्षों से जोड़ा हुआ है जो राजसेवक, वेदिका तथा आसनपट्ट पर स्थित है। गवाक्षों का प्रस्तुतिकरण भी कम मनोरम नहीं है। इन्हें कमलपुष्पों, घटपल्लवों, तथा लता-गुल्मों से विविध प्रकार से आयोजित कर अलंकृत किया गया है।

गूढ मंडप की छत मंदिर की कला का प्राण है। छत की तीन पंक्तियों वाली फानसना है। यहां शिल्प लालित्य इतना जबरदस्त उभरकर आया है कि बस दर्शक देखता ही रह जाता है। प्रथम पंक्ति में रूपकंठ विद्याधरों और गंधर्वों की नृत्य करती हुई आकृतियां अलंकृत है। प्रथम पंक्ति के चारों कोने मनोरम श्रृंगों से अभिमंडित हैं। दूसरी पंक्ति में सिंहकर्ण शिल्पांकित है। तृतीय पंक्ति के मध्य में चारों ओर सिंह कर्ण की रचना की गयी है और उसके शीर्ष भाग में सुंदर आकृति के घंटा कलश का निर्माण किया गया है।

त्रिक मंडप का शिखर गूढ मंडप की तरह फानसना प्रकार की दो पंक्तियों वाला है। इसके उत्तर की ओर सिंह कर्ण पर गौरी, वैरोट्या तथा मानसी देवियों की आकृतियां निर्मित हैं वहीं पश्चिमी फानसना के उत्तर की ओर यक्षी, चक्रेश्वरी, महाविद्या, महाकाली तथा वाग्देवी की मनोरम आकृतियां हैं।

द्वार मंडप की फानसना छत घंट द्वारा आवेष्टित है। इसके त्रिभुजाकार तोरणों की तीन फलकों में महाविद्या, काली, महामासी, वरुण यक्ष, अंबिका आदि की प्रतिमाएं निर्मित हैं। मंदिर में देहरियों पर जैन तीर्थंकर नेमिनाथ एवं महावीर स्वामी के जीवन प्रसंगों को काफी गहराई से उजागर किया गया है।

शाला के चारों स्तम्भ चौकोर हैं। इन्हें बेल-बूटों, नागपासों और कीर्तिमुखों से अलंकृत किया गया है। गूढ मंडप की दीवारों में देवकुलिकाएं निर्मित हैं। प्रत्येक कुलिका के शीर्ष पर भव्य तोरण निर्मित है। यहां का कलापक्ष भी दर्शनीय है। मंदिर में निर्मित छोटी-छोटी देवकुलिकाएं तो वास्तव में स्थापत्य कला के रत्न ही हैं।

यह मंदिर कलात्मक दृष्टि से जितना समादृत है श्रद्धा की दृष्टि से भी उतना ही लोकप्रिय है। यहां श्री पूनिया बाबा के नाम से प्रसिद्ध नाग-नागिन के रूप में अधिष्ठायक देव विराजमान हैं जो भक्तों की मनोवांछाएं पूर्ण करते हैं।

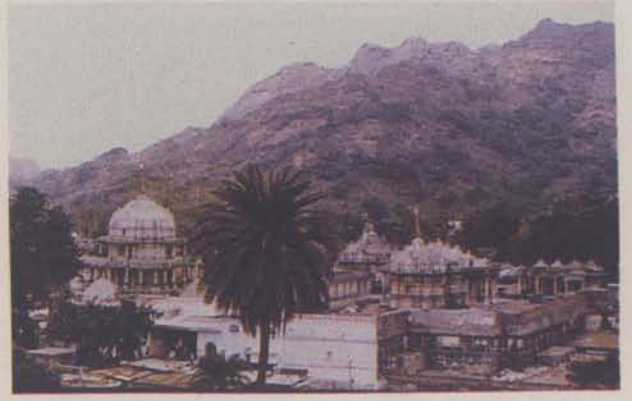
मंदिर से लगभग एक कि.मी. दूर श्री सच्चिताय माता का लोकप्रिय मंदिर निर्मित है। जहां सैकड़ों हजारों भक्तजन प्रतिदिन आकर अपनी मनोतियां पूर्ण करते हैं।



स्तम्भ की बारीक नक्काशी



नृत्याभिमुख शंख-वादन करती सुरांगना



● देलवाड़ा-आबू

भारतवर्ष के प्रमुख पर्यटन-स्थलों में माउंट आबू का नाम सदियों से चर्चित रहा है। ऊँची पर्वतमालाओं के बीच विकसित इस पर्यटन-स्थल का प्राकृतिक रूप तो स्वर्ग जैसा ही है। यहां निर्मित देलवाड़ा जैन मंदिर भी विश्व-स्तर पर आकर्षण का मुख्य केन्द्र रहा है। प्रतिवर्ष कम-से-कम पन्द्रह लाख यात्री इस भव्य मंदिर का दर्शन और अवलोकन करने आते हैं। संसार भर में शायद ही ऐसा कोई मंदिर या इमारत हो, जिसकी देलवाड़ा मंदिर में उत्कीर्ण शिल्प से तुलना की जा सके। ताजमहल भारत की भव्यतम इमारतों में से एक गिना जाता है, किन्तु जब कोई पर्यटक ताजमहल पर लुब्ध होने के बाद देलवाड़ा मंदिर पहुंचकर यहां की सूक्ष्मतम शिल्पकला को निहारता है, तो आश्चर्य से ठगा रह जाता है- ओह... ! आश्चर्य... ! अपूर्व-अनूठा ... !!

मंदिर में शिल्प का इतना वैविध्य है कि कई दिनों तक इसका निरीक्षण किया जाए, तब भी इसकी बारीकियों की थाह नहीं पायी जा सकती। वस्तुतः देलवाड़ा, राणकपुर और जैसलमेर भारतीय शिल्पकला का प्रतिनिधित्व करते हैं।

देलवाड़ा मंदिर ने अनुपम शिल्पकला की शाश्वत सम्पदा को अपने में संजोकर रखा है। उज्ज्वल-धवल संगमरमर से निर्मित यहां के मंदिर एक ओर शिल्पियों की अनूठी कारीगरी को प्रस्तुत करते हैं, वहीं दूसरी ओर वीतराग जिन प्रतिमाएं शांति एवं साधना का संदेश देती हुई अपरिसीम सौन्दर्य के साथ आध्यात्मिक वातावरण प्रदान करती हैं। मंदिर के दर्शन से दर्शक इतना भावाभिभूत हो उठता है कि हृदय के मुंदे वातायन खुल जाते हैं और उसकी चेतना परमात्मा के श्रीचरणों में समर्पित होने को लालायित हो उठती है।

‘देलवाड़ा’ वास्तव में पांच मंदिरों का समूह है। यहां दो मंदिर तो अत्यन्त विशाल हैं, शेष तीन मंदिर, मंदिर की विशालता के पूरक हैं। शिल्प-सौन्दर्य की सूक्ष्मता, कोमलता और गुम्बजों तथा मेहराबों का बारीक अलंकरण पहली ही नजर में पर्यटकों का मन मोह लेता है। नृत्य और नाट्यकला के उकेरे गए शिल्प-चित्र अद्भुत-अनुपम हैं। मंदिर की छतों पर लटकते, झूलते गुम्बज और मुखमंडल के इर्द-गिर्द फैले परिसर में शिल्पांकित माँ सरस्वती, अंबिका, लक्ष्मी, शंखेश्वरी, पद्मावती, शीतला आदि देवियों की छवियां शिल्पकला के अद्भुत नमूने हैं। शिल्पकला की बारीकी देखने के लिए इन मूर्तियों के नाखून और नासाग्र आदि का अवलोकन ही काफी है।

देलवाड़ा-मंदिरों के शिल्पकारों ने छैनी को इस निपुणता से



विमलवसही-दर्शन



लूणवसही मंदिर : कला का खजाना



देरानी-जेठानी गोखलों का ऊपरी भाग

चलाया है कि वे संगमरमर में भी वह कारीगरी दिखा गये हैं कि कोई हाथी-दांत में क्या दिखा पाये ! मंदिर की प्रायः सभी मूर्तियाँ कठोर संगमरमर में उत्कीर्ण की गई हैं, जिससे स्वतः आभास हो जाता है कि इन मूर्तियों के निर्माण में मूर्तिकारों को कितना श्रम करना पड़ा होगा ।

मंदिर के उत्कीर्णन को गहराई से देखने पर आभास होता है कि उस काल के मूर्तिकारों की मुख्य अभिरुचि आलंकारिक अभिकल्पनाओं के उत्कीर्णन में ही रही, मानव आकृति के अंकन की अपेक्षा मूर्तिकारों ने देव प्रतिमाओं के अंकन में विशेष सिद्ध-हस्तता प्राप्त कर ली थी । इन देव प्रतिमाओं, जिनमें नायकों, विद्याधरों, अप्सराओं, विद्यादेवियों तथा जैन-धर्म के अन्य देवी-देवताओं का अंकन सम्मिलित है, का निर्माण मंदिर के गुम्बजों, स्तम्भों, तोरणों में हुआ है ।

जैन-मंदिर में जैन-संस्कृति का दर्शन होना तो स्वाभाविक है, किन्तु मंदिर के निर्माताओं, सूत्रधारों और शिल्पियों ने सम्पूर्ण हिन्दू संस्कृति तथा भारतीय संस्कृति को भी यहां शिल्पांकित किया है । अपने प्रेमी की बाट जोहती विरहणी के दृश्य तक को भी यहां स्थान दिया गया है । यहाँ कुल छह मंदिर हैं, जिनमें पांच श्वेताम्बर एवं एक दिगम्बर आम्नाय का है ।

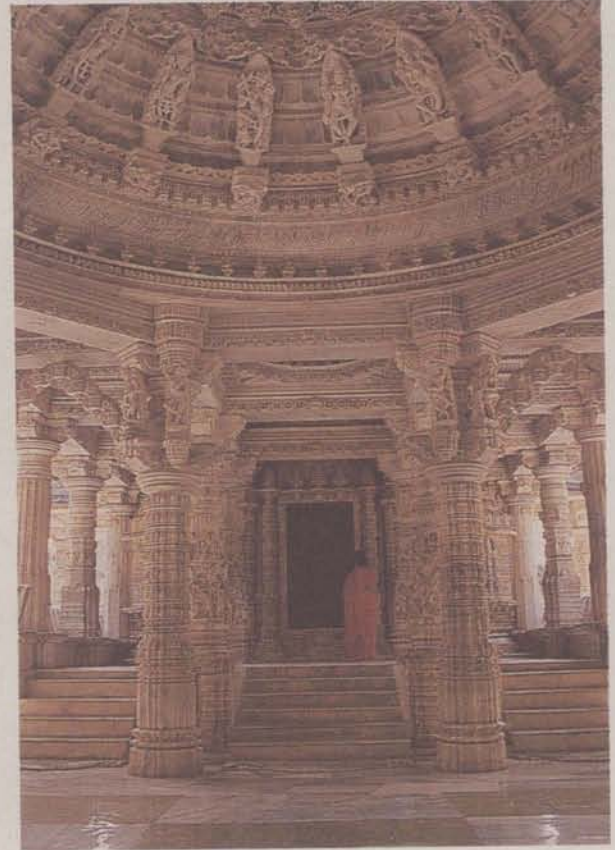
महावीर स्वामी का मंदिर— जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर सहित नौ जिन बिम्ब यहां प्रतिष्ठित हैं । यहां निर्मित मंदिरों में यह सबसे छोटा और बहुत ही सादा मंदिर है । इसका निर्माण १५८२ सन् में हुआ । मंदिर के बाह्य भाग की छतों पर आयरिश की चित्रकारी क्षतिग्रस्त-सी हो गयी है ।

विमलवसही मंदिर— देलवाड़ा परिसर का यह भव्यतम मंदिर है । इसका निर्माण महामंत्री विमल शाह ने करवाया था । विमलशाह गुजरात के चाणक्य महाराज भीमदेव के मंत्री एवं सेनापति थे । बड़नगर (गुजरात) के महान् शिल्पकार कीर्तिधर के निर्देशन में यह भव्यतम मंदिर निर्मित हुआ । करीब १५०० शिल्पी तथा १२०० श्रमिकों ने मिलकर १४ वर्षों में इस मंदिर को मूर्तरूप दिया । मंदिर-निर्माण में उस समय १८.५३ करोड़ स्वर्ण मुद्राओं की लागत आयी । सन् १०३१ में आचार्य श्रीवर्धमानसूरि की सन्निधि में मंदिर का प्रतिष्ठा-महोत्सव सम्पन्न हुआ । विमलशाह के वंशज पृथ्वीपाल ने सं. १२०४ से १२०६ तक इस मंदिर की कई देवरियों का जीर्णोद्धार करवाया तथा अपने पूर्वजों की कीर्ति को चिरस्थायी रखने के लिए इस मंदिर के सामने ही हस्तिशाला बनवायी, जिसके द्वार के मुख्य भाग में अश्वारूढ़ विमलशाह की मूर्ति है ।

सन् १३११ में अलाऊद्दीन खिलजी ने इस मंदिर को क्षतिग्रस्त कर दिया, जिसका जीर्णोद्धार मंडोर (जोधपुर) के बीजड़ और लालक भाइयों ने करवाया । मंदिर के मुख्य द्वार में प्रवेश करते ही मंदिर की संगमरमरी भव्य कलात्मक छतों, गुम्बजों, तोरण-द्वारों को देखते ही मन प्रफुल्लित हो जाता है । अलंकृत नक्काशी, शिल्पकला की भव्यता और सुकोमलता की झलक यहां हर ओर दिखायी देती है । इस मंदिर में कुल ५७ देवरियां हैं, जिनमें विभिन्न तीर्थंकरों की प्रतिमाएं परिकरों



गर्भगृह में अधिष्ठित आदिनाथ की पावन प्रतिमा



मंदिर का मनोरम दृश्य

देवी के प्रणाम →

भक्तिमय अहो नृत्य : मोहकमुद्रा →





सहित स्थापित हैं। प्रत्येक देहरी के नक्काशीपूर्ण द्वार के अन्दर दो-दो गुम्बज हैं, जिनकी छतों पर उत्कीर्ण शिल्पकला दर्शकों को अभिभूत करती है।

मंदिर की दसवीं देहरी के बाहर तीर्थकर नेमिनाथ के चरित्र का दृश्य है। यहाँ भगवान नेमिनाथ की बारात की सूक्ष्म कोरणी के अतिरिक्त भगवान कृष्ण की जल-क्रीड़ा का भी उत्कीर्णन हुआ है।

बाईसवीं और तेईसवीं देहरी के बीच एक गुफानुमा मंदिर है, जिसमें तीर्थकर आदिनाथ की श्यामवर्णीय विशाल प्रतिमा स्थापित है। यह मूर्ति विमलशाह को अंबिका माता के प्रसाद से विमलवसही के निर्माण से पूर्व भूगर्भ से प्राप्त हुई थी। प्रतिमा पुरातात्विक दृष्टि से अत्यन्त प्राचीन है एवं अपना अलग ही महत्व रखती है। मंदिर के इस खंड में छोटी-मोटी अनेक प्राचीन प्रतिमाएँ हैं।

तेईसवीं देहरी में अंबिका माता की आकर्षक प्रतिमा है, जो मंदिर के सूत्रधारों की आराधिका रही है। बत्तीसवीं देहरी में श्रीकृष्ण द्वारा कालिया नाग-दमन का दृश्य है। एक ओर कृष्ण पाताल लोक में शेष नाग की शय्या पर शयन कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर कृष्ण-बलदेव अपने साथियों के साथ यमुना के घाट पर गेंद-गुल्लती डंडा खेल रहे हैं। अड़तीसवीं देहरी में सोलह हाथ वाली सिंहवाहिनी विद्यादेवी की कलात्मक मूर्ति है।

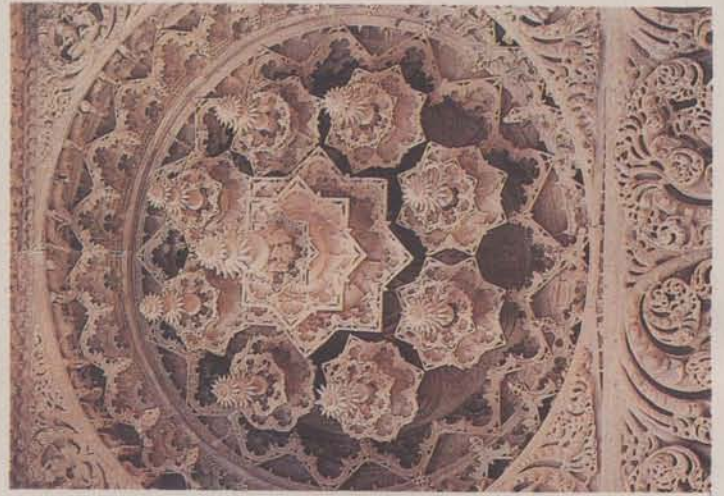
बयालीसवीं देहरी के गुम्बज में मयूरासन सरस्वती, गजवाहिनी लक्ष्मी, कमल पर लक्ष्मी, गरुड़ पर शंखेश्वरी देवी की मनोहर मूर्तियाँ हैं। मूर्ति-निर्माण की सूक्ष्मता दर्शनीय है।

चवालीसवीं देहरी में नक्काशीदार तोरण और परिकरयुक्त श्रीवारिषेण प्रभु की प्रतिमा विराजमान है। छयालीस से अड़तालीसवीं देहरी के बाहर गुम्बज में सोलह हाथ वाली शीतला, सरस्वती और पद्मावती की मूर्तियाँ बेहद सुन्दर हैं।

मंदिर का सर्वोत्तम कलात्मक भाग उसका रंगमंडप है। बारह अलंकृत स्तंभों और कलात्मक सुन्दर तोरणों पर आश्रित बड़े गोल गुम्बज में हाथी, घोड़े, हंस, नर्तक आदि की ग्यारह गोलाकार मालाएँ और झूमकों के स्फटिक गुच्छे लटक रहे हैं। प्रत्येक स्तम्भ के ऊपर वाद्य-वादन करती ललनाएँ हैं और उनके ऊपर नाना प्रकार के वाहनों से सुशोभित सोलह विद्या देवियों की अत्यन्त रमणीय प्रभावशाली प्रतिमाएँ हैं। रंगमंडप से ऊपर की नव चौकी में नौ समकोण आकृतिवाली प्रत्येक अलंकृत छत में विभिन्न प्रकार की खूबसूरत खुदाई है।

मूल गर्भगृह में भगवान ऋषभदेव की अत्यन्त ही सुकुमार और नयनाभिराम मूर्ति प्रतिष्ठित है। गूढ़ मंडप में ध्यानावस्था में खड़ी भगवान पार्श्वनाथ की मूर्तियाँ भी चित्ताकर्षक हैं। विमलवसही मंदिर के बाहर हस्तिशाला है, जिसका सन् १९९१ में जीर्णोद्धार हुआ।

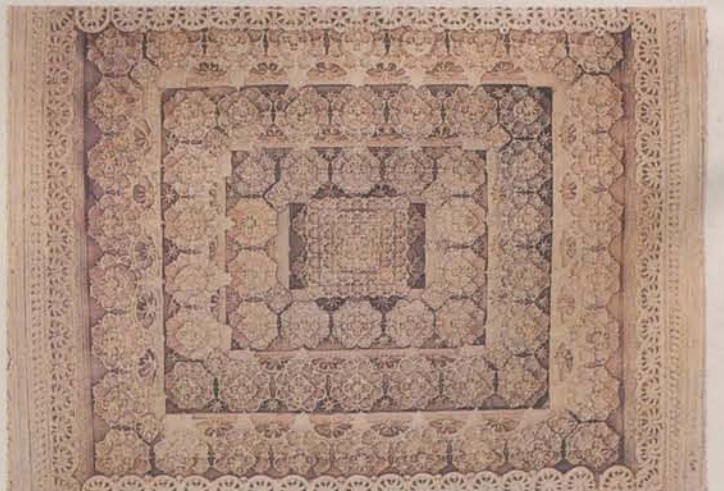
लूणवसही मंदिर— यह मंदिर कलाजगत का प्राण है। मंदिर में इतनी बारीक कोरणी की गई है कि दर्शक पहले ही क्षण में अपनी अंगुली दांतों तले ले आता है। छोटे-से-छोटे पत्थरों में विराट से विराटतम को उत्कीर्ण करने में मंदिर के शिल्पी सिद्धहस्त दिखाई देते



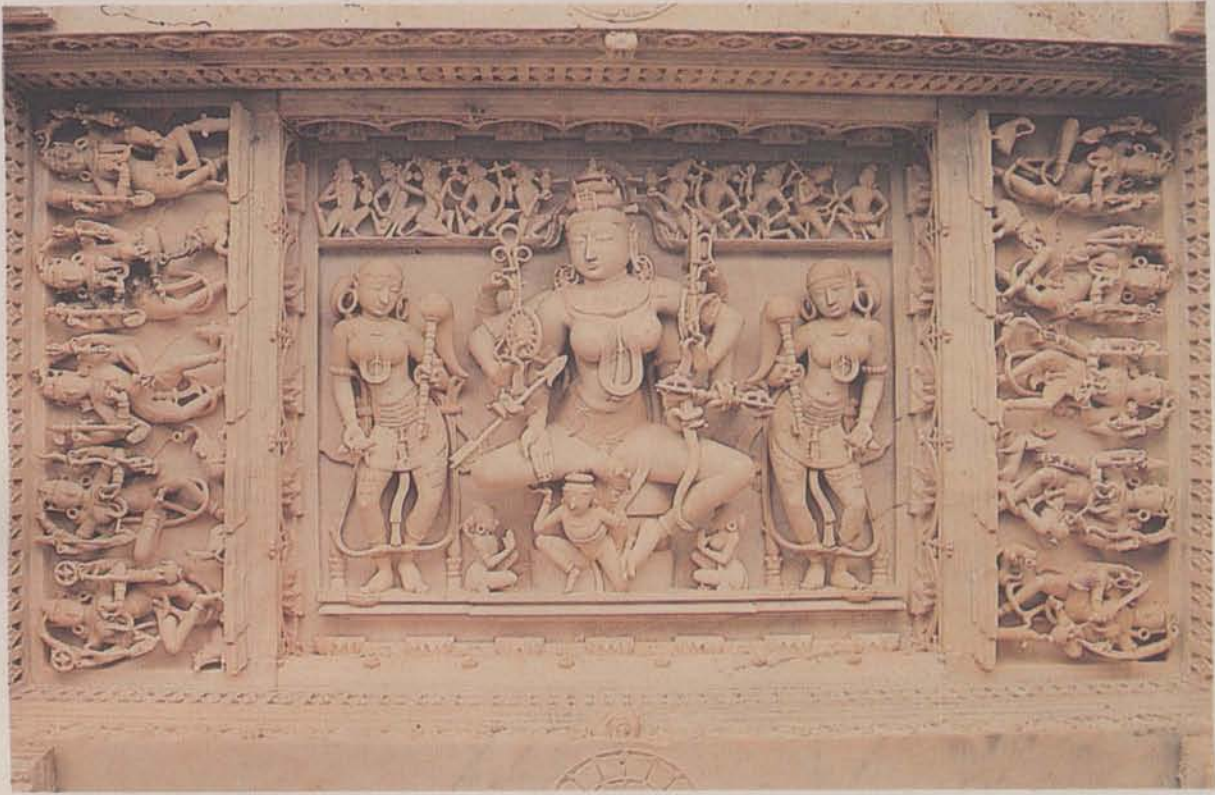
गुंबज में लटकते सूरजमुखी फूल



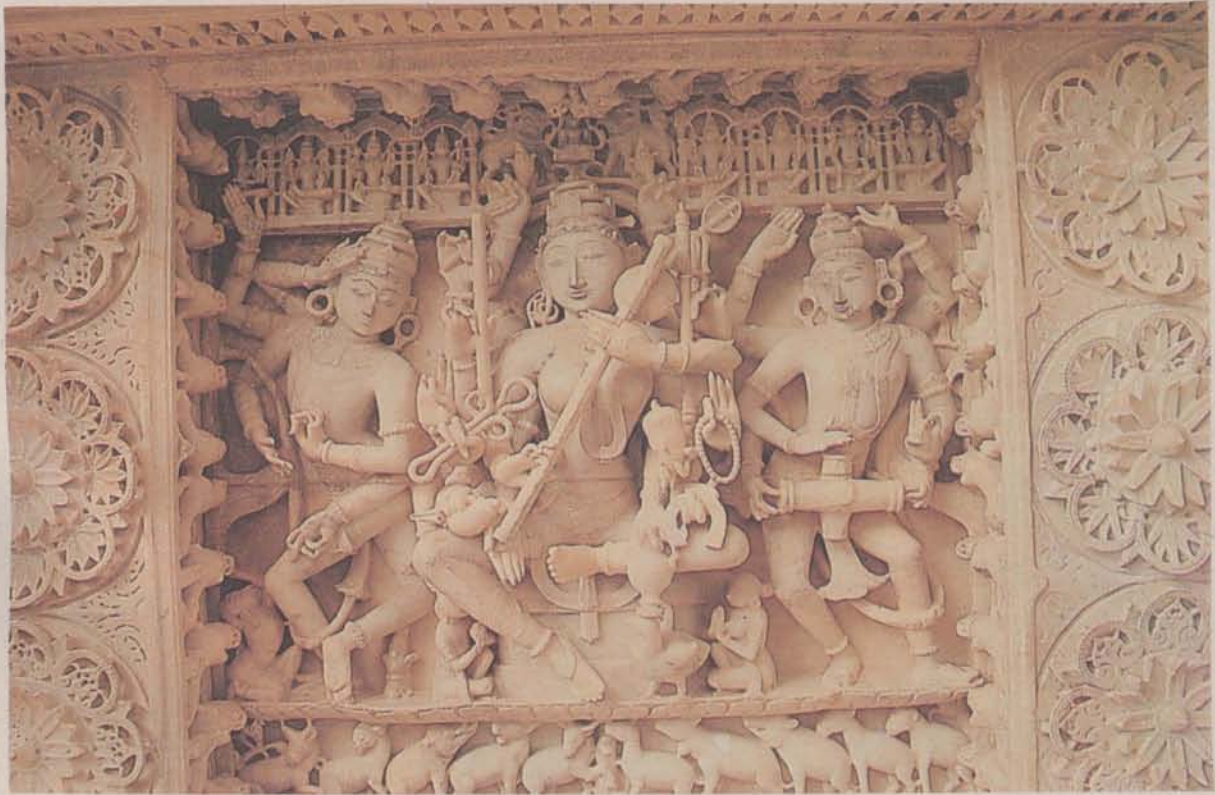
मंदिर के शताधिक गुंबजों में से एक



पाषाणों में खिलते फूल : एक गुंबज



देवरियों की बाहरी छतों में उत्कीर्ण देवी का सौष्टव

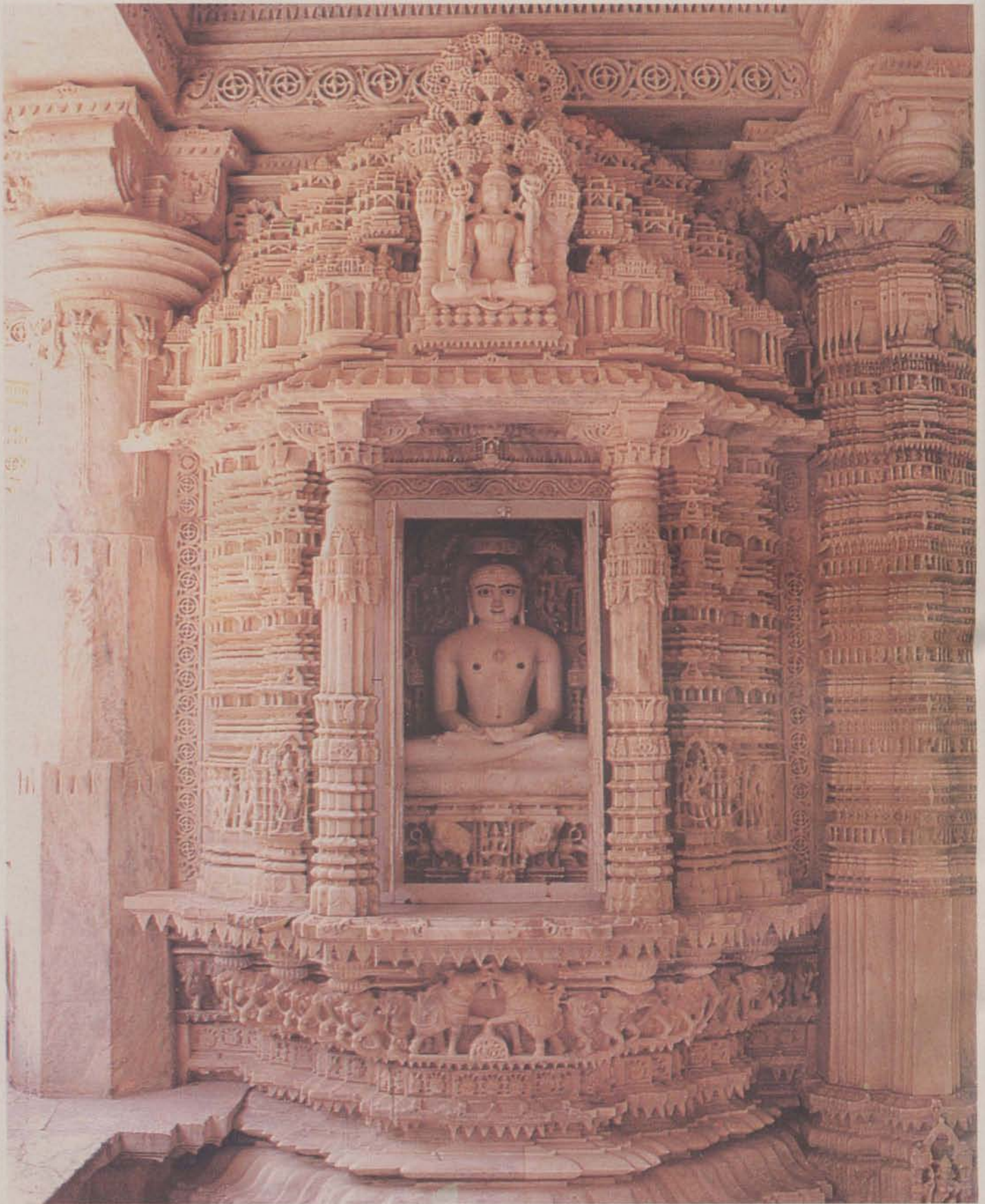


मां सरस्वती : खूबसूरत नक्काशी

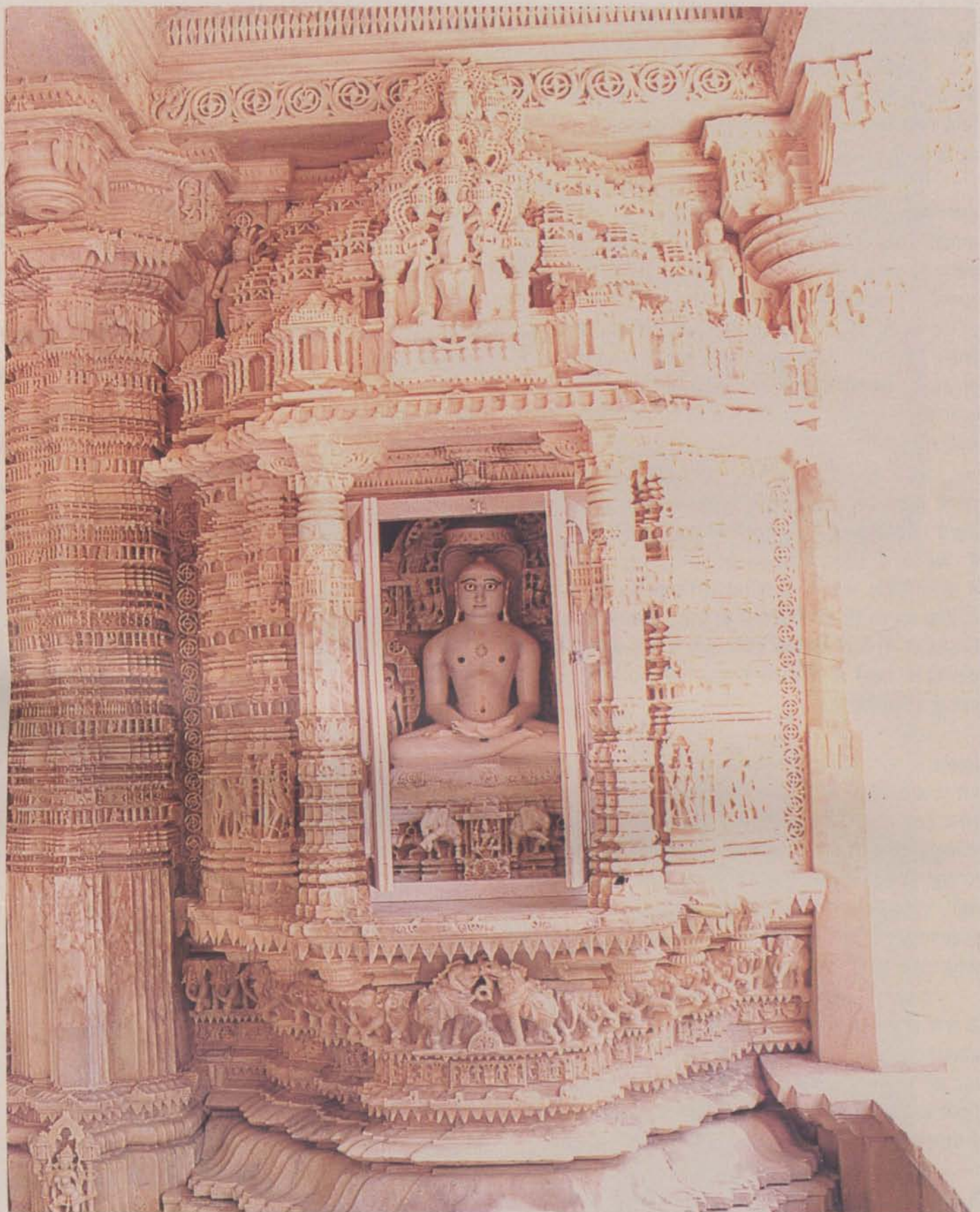
गुंबज में खूबसूरत नक्काशी→







देराणी का गोखला



जेठाणी का गोखला

हैं। कला के इस अनमोल खजाने को देखने के लिए अगर एक बार गर्दन ऊपर उठ जाये, तो वापस झुकने का नाम न ले।

गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव के अमात्य वस्तुपाल एवं तेजपाल ने श्वेतवर्णीय संगमरमर से इस विश्व प्रसिद्ध मंदिर का निर्माण करवाया था। तेजपाल के सुपुत्र लावण्यसिंह के नाम पर मंदिर का नामकरण लूणवसही हुआ।

मंदिर में जैन-धर्म के बाईसवें तीर्थंकर करुणामूर्ति नेमिनाथ की श्यामवर्णीय कसौटी पत्थर की प्रतिमा विराजमान है। दर्शन मात्र से मनमोहित करने वाली इस प्रतिमा की प्रतिष्ठा सं. १२८७ चैत्र कृष्ण तृतीया को आचार्य श्री विजयसेनसूरि के कर कमलों से हुई थी। प्राप्त सन्दर्भों से पता चलता है कि मंदिर के निर्माण में १३ करोड़ से भी अधिक स्वर्णमुद्राएं व्यय हुई थीं। मंदिर का शिल्पलालित्य प्रसिद्ध शिल्पी सौमनदेव की प्रस्तुति माना जाता है। सं. १३६८ में अलाऊद्दीन खिलजी के सैन्य दल ने मंदिर के गर्भगृह एवं मंदिर के अन्य भाग को क्षतिग्रस्त करने का प्रयास किया था। सं. १३७८ में श्रेष्ठी चंडसिंह के पुत्र श्रेष्ठि ने जीर्णोद्धार करवाया।

मनुष्य जाति के लिए अनुपम उपहार बने इस मंदिर के मुख्य द्वार में प्रवेश करते ही मंदिर का भव्य एवं आकर्षक स्वरूप दिखाई देता है। विश्व प्रसिद्ध देरानी-जेठानी के गोखले इस मंदिर में निर्मित हैं। बाईं ओर के गोखले में भगवान आदिनाथ एवं दाईं ओर के गोखले में श्री शांतिनाथ भगवान की प्रतिमा विराजमान है। देरानी-जेठानी दोनों का अनुपम प्रेम और शिल्पियों की बेजोड़ कला का परिणाम यह निकला कि दोनों ही देहरियां अपने आप में हू-ब-हू बनी हैं। इन देहरियों को देखने से यों लगता है, मानों शिल्पियों ने इन पत्थरों में प्राण फूंक दिए हैं।

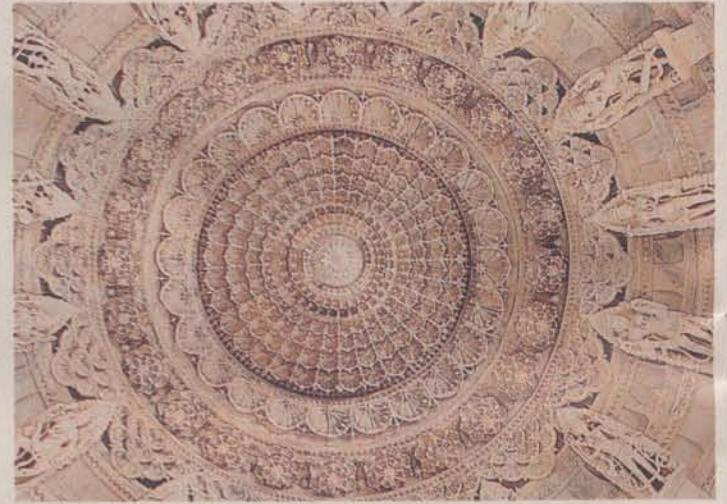
मंदिर के रंगमंडप में पहुंचने पर यहां की विस्मयकारी शिल्पकला की सुकोमलता, सुन्दरता और उत्कृष्टता की एक झलक हमें दिखाई देती है और कलाकारों की कला की एक अमिट छाप लोक हृदय में अंकित हो जाती है। गुम्बज के मध्य में लटकता कलापूर्ण 'झूमका' स्फटिक बिंदु जैसा प्रतीत होता है। मंदिर की छत पर जहाँ भी नजर डालें, तो लगता है, सचमुच, सब कुछ बेमिसाल है यहाँ। प्रत्येक स्तम्भ पर विभिन्न वाहनों पर सोलह विद्या देवियों की खड़ी प्रतिमाएं हैं। रंगमंडप के चारों ओर बने तोरण इतने कलात्मक हैं कि दर्शक अभिभूत हो जाता है।

रंगमंडप में दक्षिण की ओर दीवारों और छतों पर भगवान कृष्ण के जन्म का दृश्य-माता शयन अवस्था में, कारागृह, ग्वाल-बाल आदि नक्काशीयुक्त शिल्प कृतियां हैं। रंगमंडप के आगे नव चौकी है। यहां की ९ छतों में प्रत्येक में श्रेष्ठतम नक्काशी का आश्चर्यजनक शिल्प कार्य है। संगमरमर में ऐसे सुकुमार पुष्प-गुच्छ उभर कर आए हैं कि दर्शक पहले ही दर्शन में कह देता है—न भूतो न भविष्यति।

मंदिर की परिक्रमा में ५० देहरियां हैं, जिनके परिकर एवं गुम्बज में कला की लालित्यपूर्ण प्रस्तुति हुई है। देहरी १ से १० तक में क्रमशः अम्बिका देवी की प्रतिमा, पुष्प नर्तकियां, हंस के कलामक पट्ट और



मंदिर के तोरणों में से एक



नेमत बारीक नक्काशी की: मंदिर का एक गुंबज



गुंबज में अवस्थित देव-नृत्यांगनाएं



पुष्पदल में नृत्यरत अप्सराएं



देवियों की प्रशान्त छवियां



विमल वसही मंदिर का अन्तर्दर्शन



स्तम्भों में अनुपम कला



बांसुरी-वादन करती देवी : इसे कहते हैं कला



झींझा-वादन करती देवी

द्वारिका तथा समवशरण का दृश्य अंकित हैं।

ग्यारहवें गुम्बज में सात पंक्तियां हैं। हाथी-घोड़े, नाट्यकला, भगवान नेमिनाथ के जीवन-प्रसंग, विवाह, दीक्षा आदि एवं गवाक्ष में बैठी राजुल की आकृति मनोरम है।

अठारहवीं से छब्बीसवीं देहरी के गुम्बजों में भी कला के विभिन्न पक्षों को उजागर किया गया है। देहरी २६ से २७ के मध्य में विशाल हस्तिशाला निर्मित है। यहां संगमरमर के बेहद सुन्दर १० हाथी हैं। यहां मंदिर निर्माताओं एवं उनके गुरुजनों की प्रतिमाएं भी हैं। २७ से ५० तक की देहरियों में विभिन्न प्रकार के दृश्य अंकित हैं। पचासवें गुम्बज में सुन्दर गहरे जलाशय का कलात्मक दृश्य उभरा है।

लूणवसही मंदिर के बाहर दायीं ओर कुंथुनाथ का दिगम्बर जैन मंदिर है। वहां से सीढ़ियां उतरने पर काले पत्थर का कुम्भ स्तम्भ है। सन् १४४९ में मेवाड़ के महाराणा कुम्भा ने इसे बनवाया था। यहीं दायीं ओर वृक्षों के मध्य युगप्रधान दादा श्रीजिनदत्तसूरि की छतरी बनी हुई है। इस महान चमत्कारी एवं जैन-धर्म के प्रभावशाली आचार्य दादा जिनदत्तसूरि एवं दादा जिनकुशलसूरि की यहां चरण पादुकाएं हैं।

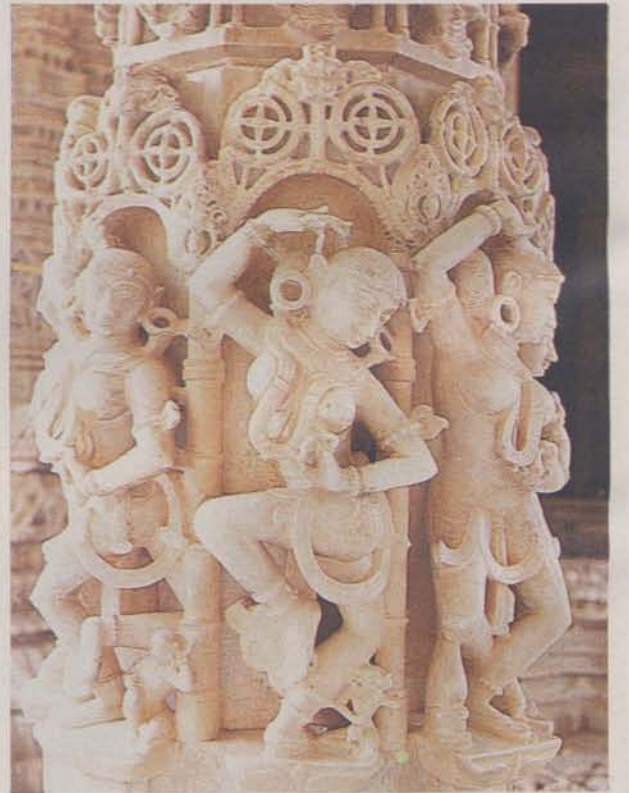
पीतलहर मंदिर— इस मंदिर का निर्माण भीमाशाह ने करवाया था। अतः इसे भीमाशाह का मंदिर भी कहते हैं। मंदिर का निर्माण-काल सन् १३७४-८९ माना जाता है। मंदिर का जीर्णोद्धार गुजरात के सुन्दर एवं गदा ने करवाया था। मंदिर में पंचधातु की भगवान ऋषभदेव की ४१ इंच की प्रतिमा विराजमान है। पंचधातु का परिकर आठ गुणा साढ़े पांच फुट का है। इस प्रतिमा में पीतल की मात्रा अधिक होने से इसे पीतलहर मंदिर कहा जाता है। इस प्रतिमा की प्रतिष्ठा सन् १४६८ में आचार्य लक्ष्मीसागर सूरि के करकमलों से सम्पन्न हुई थी। मंदिर में और भी अनेक संगमरमर की विशाल जिन प्रतिमाएं हैं।

खरतरवसही-पार्श्वनाथ मंदिर— मंदिर के बाईं ओर बना यह मंदिर काफी विशाल है। खरतरगच्छ के अनुयायी श्रावक मंडलिक ने इस मंदिर का निर्माण करवाया। अतः इसे खरतरवसही मंदिर कहा जाता है। पालीताना तीर्थ में भी खरतरवसही के नाम से विशाल जिन मंदिर है। इस तीन मंजिले मंदिर में चारों दिशाओं की ओर मुंह किए भगवान पार्श्वनाथ की चार प्रतिमाएं विराजमान हैं, इसलिए इसे चौमुखा मंदिर भी कहते हैं। इस विशाल मंदिर की प्रतिष्ठा सन् १५१५ आषाढ़ कृष्ण १ को आचार्य श्री जिनचन्द्र सूरि के करकमलों से हुई थी।

मंदिर का शिखर तो सुरम्य है ही, साथ ही मूलनायक श्री पार्श्वनाथ की श्वेतवर्णीय प्रतिमाएं और उनका परिकर अत्यन्त कलात्मक है। मंदिर के चारों ओर बड़े-बड़े रंगमंडप हैं। मंदिर की बाहरी दीवारों पर दिग्पालों, यक्षिणियों, साल भंजिकाओं और स्त्रियों की श्रृंगारिक शिल्प-कृतियां भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से मनोरम हैं।



लूणवसही मंदिर : कला का खजाना



स्तंभ का एक अंश



● ગિરનાર

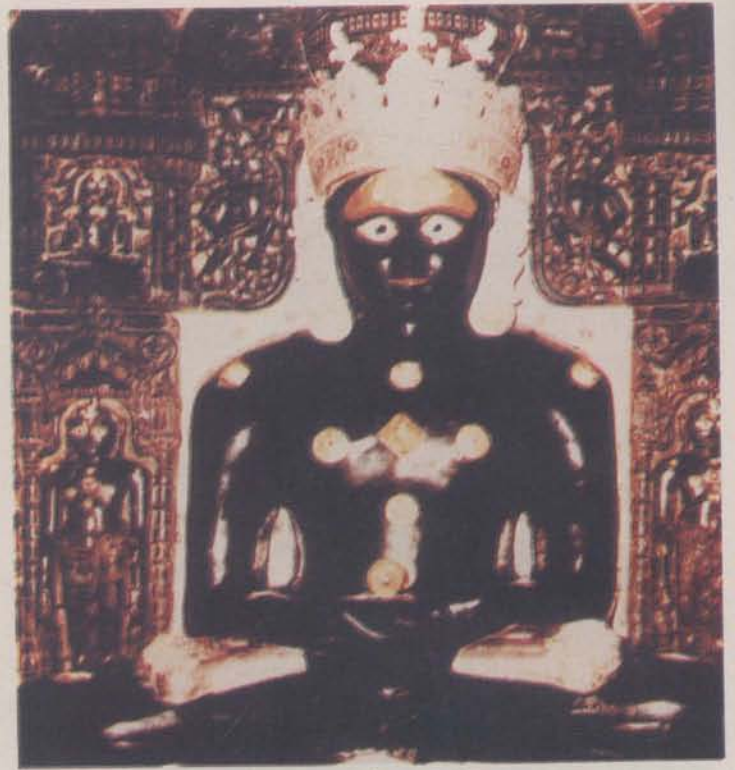
गिरनार वह पावन स्थली है जिससे नेमि-राजुल की प्रेम, विरह, वैराग्य, कैवल्य और निर्वाण की अत्यन्त लोम हर्षक गाथाएं जुड़ी हुई हैं। कुमार अरिष्टनेमि विवाह हेतु राजिमती के द्वार पर उपस्थित होते हैं, किन्तु दावत के लिए एकत्रित पशुओं की करुण चीत्कार सुनकर अरिष्टनेमि विवाह से विमुख हो जाते हैं। पशु-वधशाला के द्वार खोलकर पशुओं को मुक्त करवा दिया जाता है और विवाह के लिए प्रस्तुत अरिष्टनेमि राजिमती की वरमाला स्वीकार करने की बजाय गिरनार पर्वत की ओर अपने कदम बढ़ा लेते हैं। अरिष्टनेमि के इस अभिनिष्क्रमण की कथा को न केवल घर-घर में गाया-सुनाया जाता है, वरन् जैन-धर्म के तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ भी इस महान् करुणा के चित्रित दृश्य को देखकर प्रभावित हो जाते हैं और प्रव्रज्या स्वीकार कर लेते हैं।

राजिमती की वरमाला उसके हाथों में ही धरी रह जाती है। हल्दी और मेंहदी अपना रंग तो ले आती है, पर मांग भरने से पहले ही अहिंसा और करुणा का ऐसा अमृत अनुष्ठान होता है कि अरिष्टनेमि गिरनारवासी श्रमण हो जाते हैं। राजिमती भी उनके पावन पदचिह्नों का अनुसरण करती है। अरिष्टनेमि को गिरनार पर्वत पर साधना करते हुए ध्यान की उज्ज्वल भूमिका में परमज्ञान उपलब्ध होता है। राजिमती, जो किसी वक्त नेमिनाथ की पत्नी होने वाली थी, अरिष्टनेमि के साध्वी संघ की प्रवर्तिका और अनुशास्ता बनी। अरिष्टनेमि भगवान् महावीर से करीब बहत्तर हजार वर्ष पूर्व हुए।

गिरनार पर्वत पर अरिष्टनेमि और राजिमती के अतिरिक्त अन्य अनेकानेक संत, महंत और सिद्ध योगियों का निर्वाण हुआ। सचमुच यह वह स्थली है, जो भारतीय आराध्य स्थलों का प्रतिनिधित्व करती है।

गिरनार गुजरात के जूनागढ़ के पास समुद्र-तल से ३१०० फुट ऊँची पर्वतावली है। गगन चूमती पर्वत मालाओं के बीच परिनिर्मित यह पावन तीर्थ जैन-धर्म और हिन्दु-धर्म दोनों का पूज्य आराध्य स्थल है। जैनों में भी श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही आम्नाय के अनुयायी इस तीर्थ की पवित्र माटी को अपने शीष पर चढ़ाने के लिए आते हैं। एक दृष्टि से तो यह पालीताना महातीर्थ की पाँचवीं टूंक माना जाता है। यद्यपि पहाड़ की चढ़ाई कठिन है, किन्तु सं. १२२२ में राजा कुमारपाल के महामंत्री आग्रदेव के प्रयासों से दुर्गम चढ़ाई को अपेक्षाकृत सरल बनाया हुआ है।

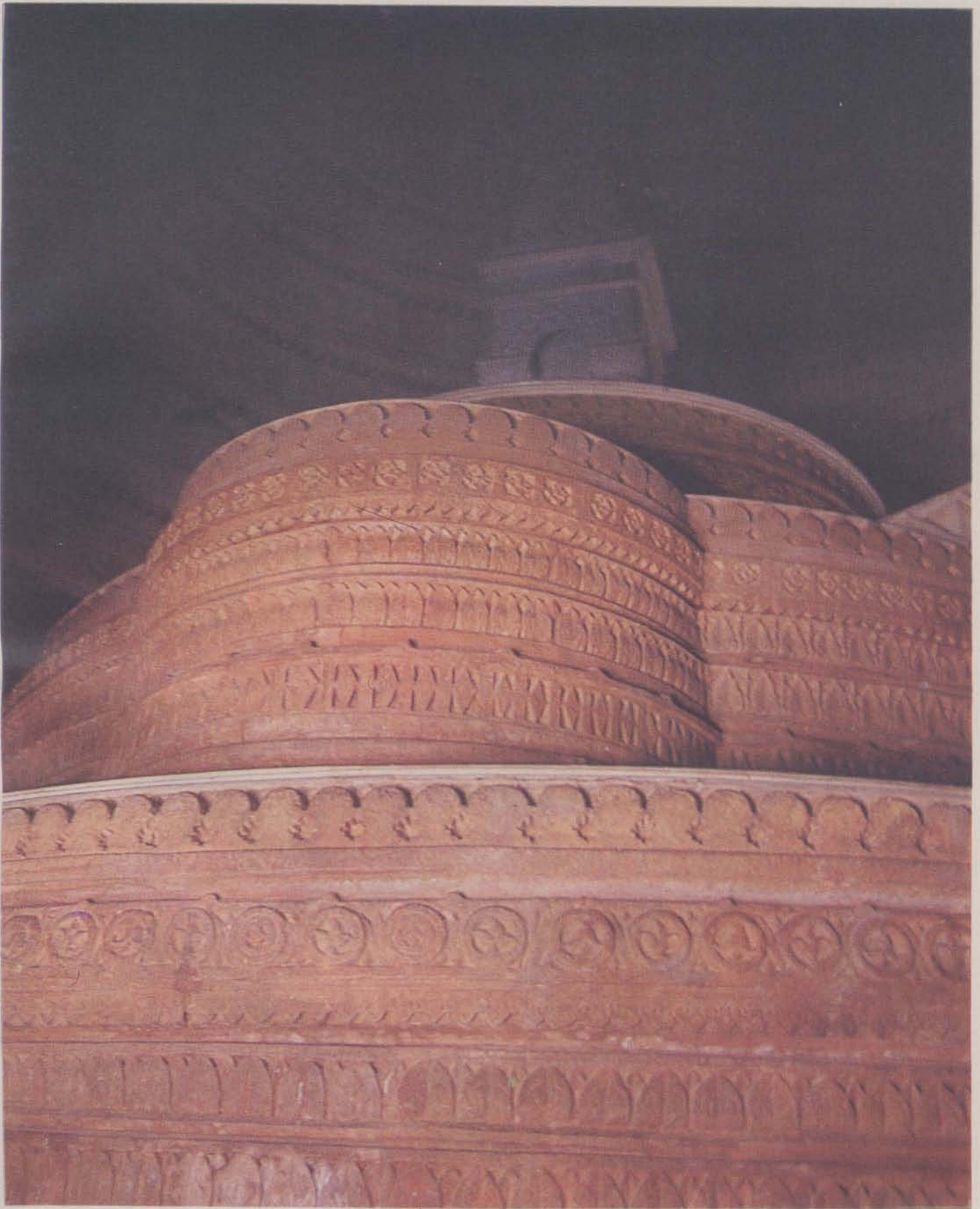
पर्वत पर स्थित मंदिर एक प्रकार से मंदिरों का गांव ही दिखाई



मूलनायक तीर्थंकर श्री नेमिनाथ



परिकर एवं शिखर का एक भाग



गिरनार की नेमत

देता है। मंदिरों की भव्यता और सुंदरता अपने आप में बेमिसाल है। मंदिरों का जैसा शिल्प और आकार शास्त्रीय परम्परानुसार मान्य है गिरनार पर्वत के मंदिरों को उसका आदर्श कहा जाना चाहिये। गुजरात के महान् धुरंधर शिल्पियों की शिल्पकला का यहां प्राचीन खजाना देखने को मिल जाता है। मंदिर को चाहे बाहर से देखा जाये, चाहे भीतर से श्रद्धा और कला दोनों ही अपने परिपूर्ण वैभव के साथ मुखरित हुई हैं।

गिरनार-पर्वत भी विदेशी आक्रामकों से अछूता नहीं रहा है, लेकिन इसके बावजूद समय-समय पर अनेक सम्राटों तथा श्रेष्ठ श्रद्धालुओं ने तीर्थ के जीर्णोद्धार एवं विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

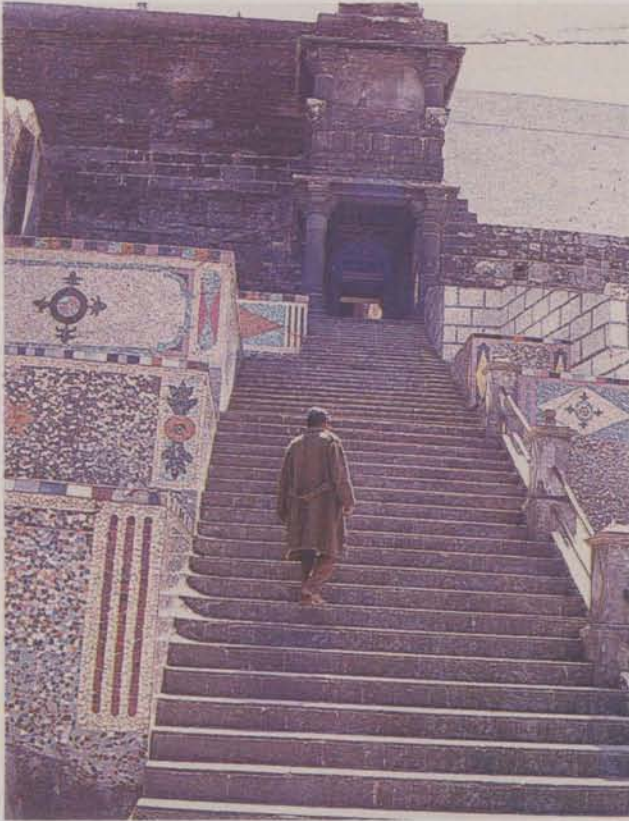
सं. ६०९ में काश्मीर के श्रेष्ठ श्री अजितशाह तथा रत्नाशाह द्वारा तीर्थोद्धार किये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है। बारहवीं सदी में सिद्धराज के मंत्री श्री सज्जन शाह तथा प्रसिद्ध महामंत्री श्री वस्तुपाल-तेजपाल द्वारा जीर्णोद्धार होने का शिलालेख यहां उत्कीर्ण है। राजा मंडलिक ने तेरहवीं सदी में यहां स्वर्ण-पत्रों से मंडित मंदिर बनवाया था। चौदहवीं सदी में समरसिंह सोनी, सतरहवीं सदी में वर्धमान और पद्मसिंह ने तीर्थ का उद्धार करवाया। बीसवीं सदी में नरसी केशवजी द्वारा पुनरोद्धार का उल्लेख प्राप्त होता है। इनके अतिरिक्त भी कई ऐसे अनेक सम्राट-सामन्तों ने इस तीर्थ के विकास में अपनी अहं भूमिका निभायी है, जिनमें राजा संप्रति, राजा कुमारपाल,



गिरनार : नेमि-राजुल का धाम



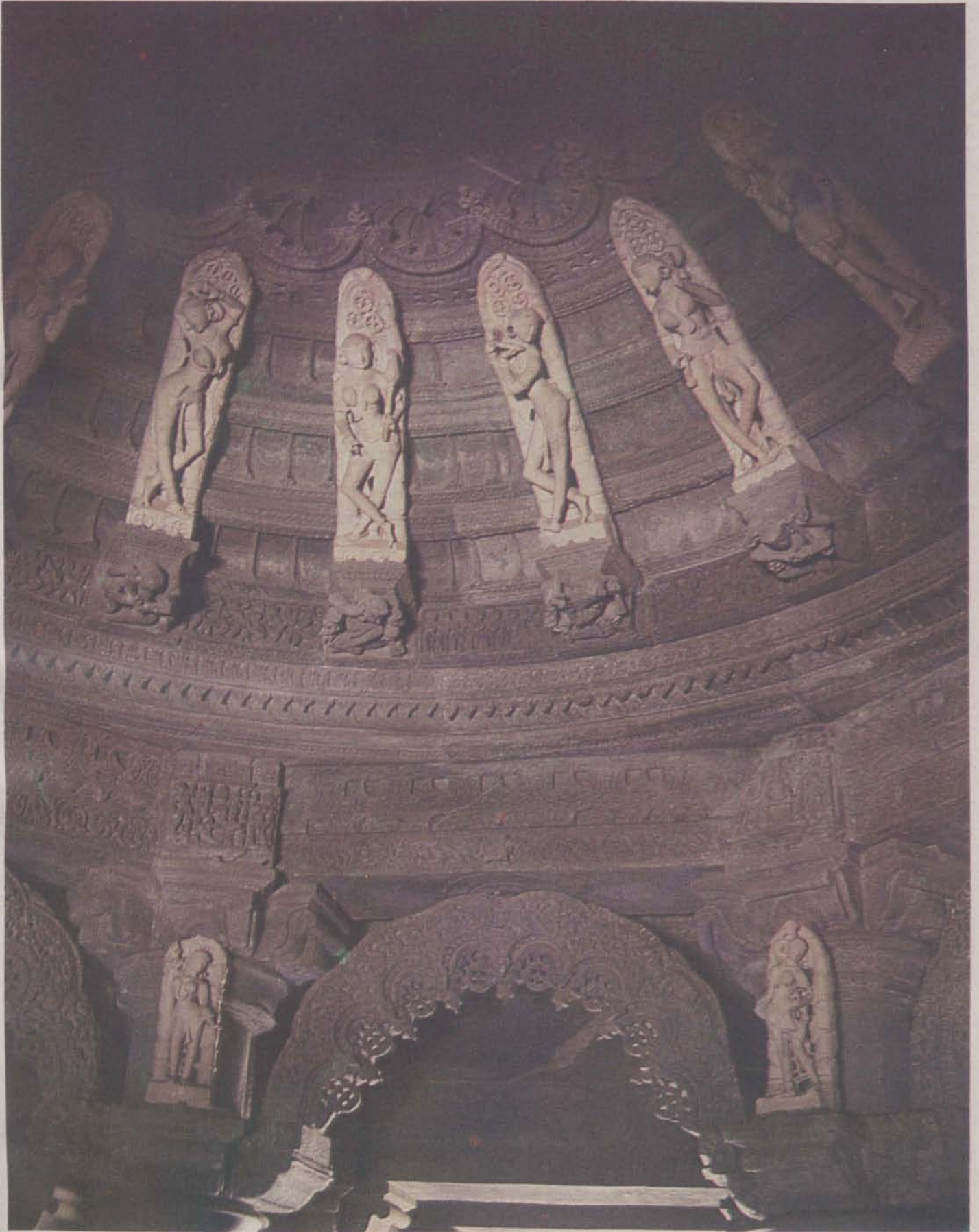
मंदिर का मनोरम दृश्य



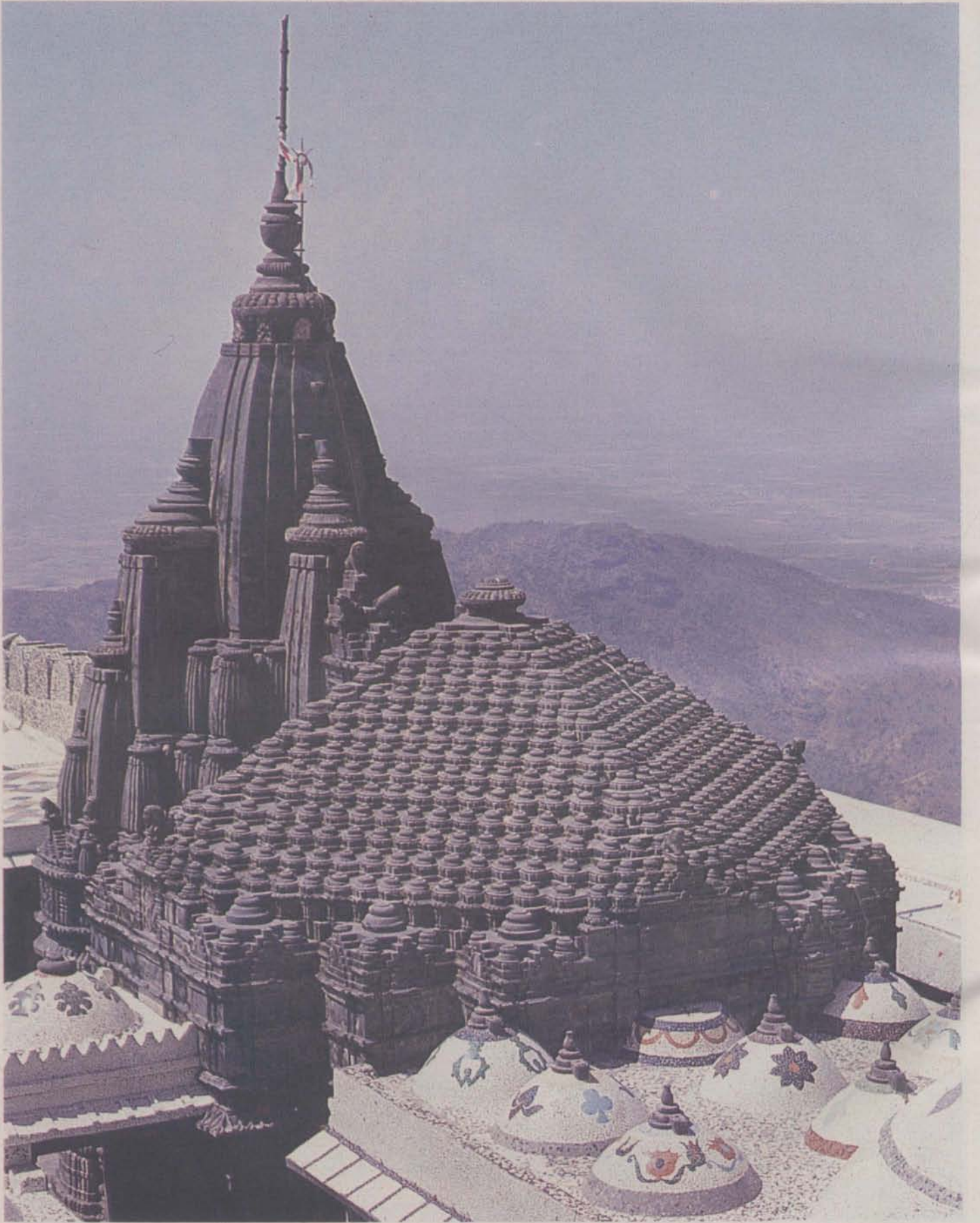
मुक्ति के सोपान



गिरनार की सर्वोच्च चोटी



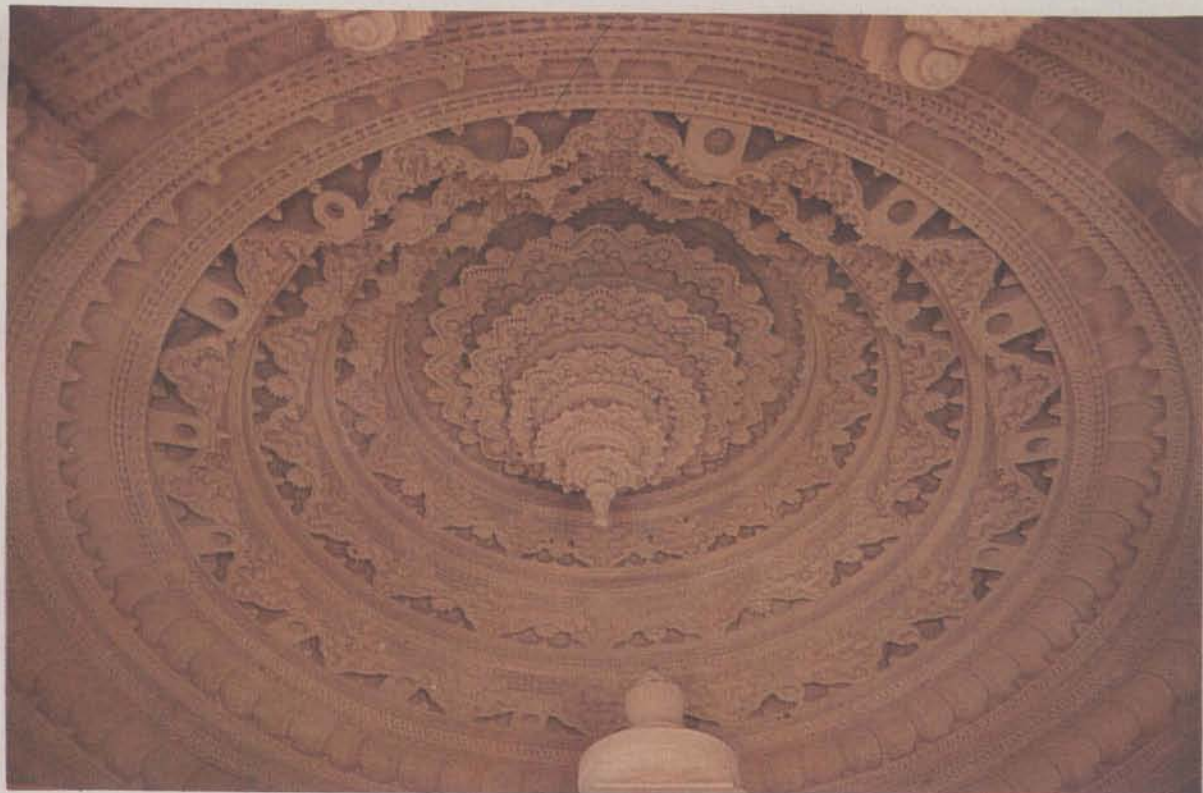
परिकर में नृत्यरत नृत्यांगनाएं



गगनचुंबी शिखर



पंचपुष्प की अद्भुत प्रस्तुति

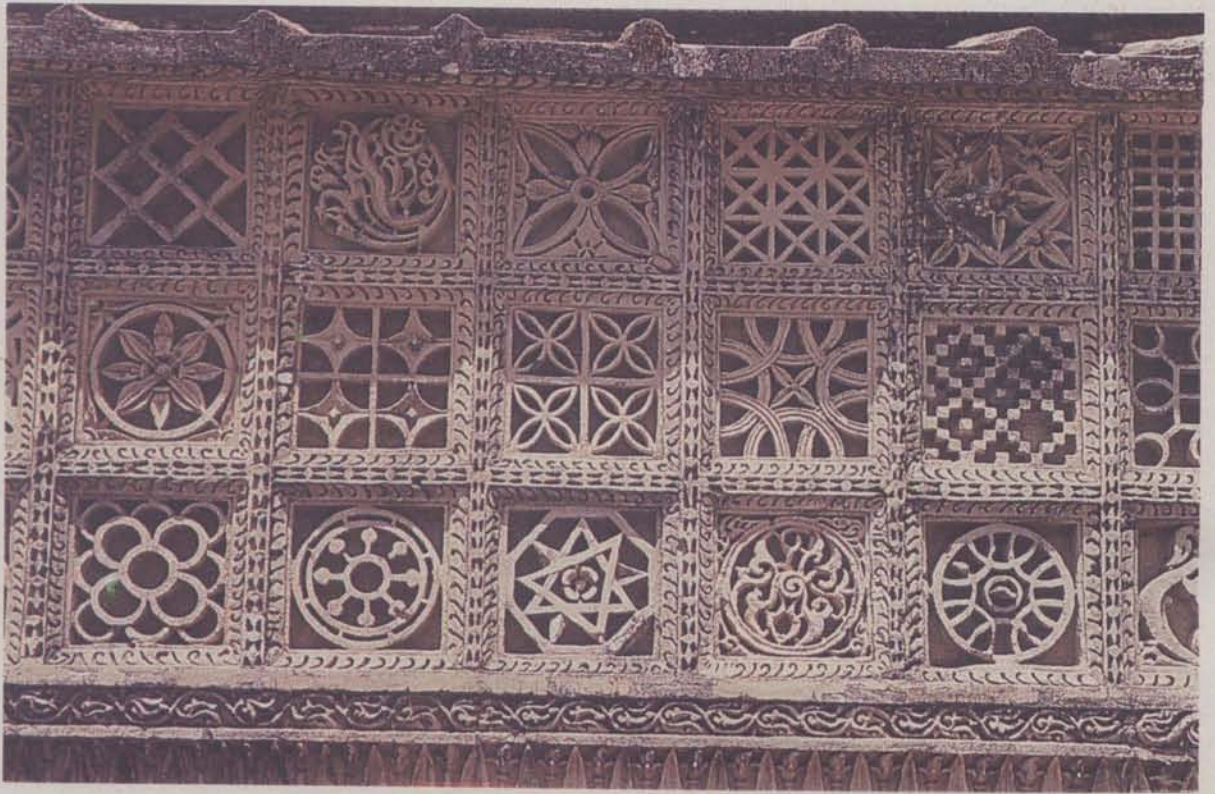


गुंबज में लटकते झूमर

गिरनार मंदिर का गुंबज—→







गवाक्ष : शिल्प के आरपार



परिकर में उत्कीर्ण नृत्यांगनाएं



अद्भुत संरचना: एक मुख, पंच शरीर



क्रीडा-केलि

मंत्री सामंतसिंह, मंत्री संग्राम सोनी तथा मंत्री आम्रदेव आदि का नाम उल्लेखनीय है।

गिरनार पर्वत की तलहटी में दो श्वेताम्बर एवं एक दिगम्बर मंदिर हैं। तलहटी के मंदिर के निकट ही पर्वत की चढ़ाई प्रारम्भ होती है। चढ़ाई काफी कठिन है। लगभग ३ कि. मी. लम्बे मार्ग में कम से कम ४००० सीढ़ियां हैं, पर भक्त का हृदय जब प्रभु दर्शन को लालायित हो तो फिर दुर्गम, दुर्गम कहां रह पाता है!

चढ़ाई पूर्ण होने पर श्री नेमिनाथ भगवान की मुख्य टूंक का द्वार दिखाई देता है। यहां ९०x१३० फुट के विशाल चौक के मध्य में परिनिर्मित जिनालय अपनी अद्भुत छटा बिखेरता है। इस जिनालय के सामने ही मानसंग भोजराज की टूंक है। मंदिर के मूलनायक श्री संभवनाथ है। मुख्य टूंक की उत्तर दिशा में कुछ दूरी पर मेलकवसही टूंक है। सिद्धराज के महामंत्री सज्जन सेठ द्वारा निर्मापित इस टूंक में मूलनायक श्री सहस्रफणा पार्श्वनाथ है। इस टूंक में तीर्थंकर आदिनाथ की एक विशाल प्रतिमा है जिसे लोग 'अद्भुत जी' भी कहते हैं। यहां से कुछ दूरी पर संग्राम सोनी की टूंक है। प्राप्त उल्लेखों से ज्ञात होता है कि इस मंदिर का निर्माण सोनी समरसिंह और मालदेव ने कराया था। मुख्य मंदिर दो मंजिल का है जिसके मूलनायक श्री सहस्रफणा पार्श्वनाथ है।

संग्राम सोनी की टूंक के आगे कुमारपाल राजा की टूंक है। प्राप्त सन्दर्भों से ज्ञात होता है कि इस टूंक का निर्माण राजा कुमारपाल ने तेरहवीं सदी में किया था। यहां के मूलनायक श्री अभिनन्दन स्वामी हैं। यहां निकट में भीमकुंड और गजपद कुंड भी हैं। इस टूंक में कुछ दूरी पर वस्तुपाल-तेजपाल की टूंक है। वहां उत्कीर्ण शिलालेख से ज्ञात होता है कि सं. १२८८ में इस टूंक का निर्माण हुआ था। टूंक में श्री पार्श्वनाथ भगवान, श्री ऋषभदेव भगवान एवं श्री महावीर स्वामी के मंदिर हैं। ऋषभदेव स्वामी के मंदिर में अब श्री शामला पार्श्वनाथ जी की प्रतिमा विराजमान है।

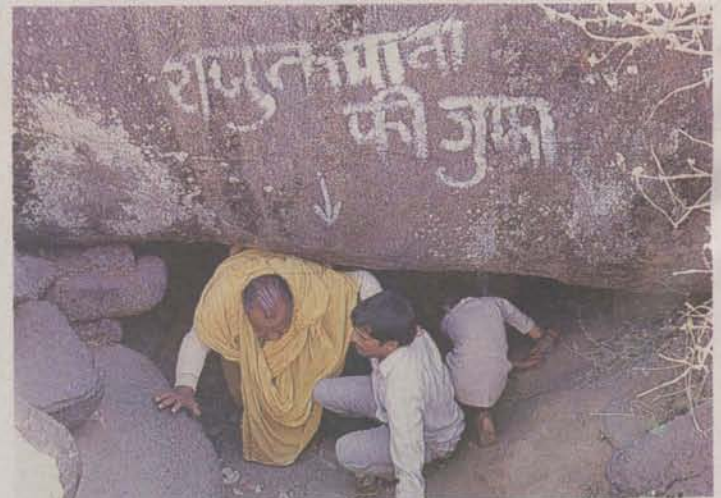
इस टूंक के पास ही श्री संप्रति राजा की टूंक है। मंदिर काफी विशाल एवं प्राचीन है। मंदिर के मूलनायक श्री नेमिनाथ भगवान हैं। यहां से कुछ दूरी पर क्रमशः श्री चौमुखजी, श्री संभवनाथ भगवान की टूंक, धर्मशी हेमचन्द्र जी की टूंक, सती राजुलमति की गुफा, गौमुखी गंगा एवं चौबीस जिनेश्वर की टूंक है।

गिरनार की पांच टूंके प्रचलित हैं। पहली टूंक तीर्थंकर नेमिनाथ की है। दूसरी टूंक श्री अंबाजी की है। तीसरी टूंक को ओघड़ शिखर कहते हैं जहां नेमिनाथ भगवान की चरण पादुकाएं प्रतिष्ठित हैं। चौथी टूंक पर भी नेमिनाथ के चरण हैं। पांचवी टूंक बीहड़ जंगल में पर्वत की ऊंची चोटी पर है जिसमें नेमिनाथ एवं वरदत्त गणधर की चरण पादुकाएं हैं।

प्राकृतिक सुषमा से अभिमंडित इस पावन तीर्थ की यात्रा जीवन का सौभाग्य है। प्रणाम हैं, नेमि और राजुल को जिनके चरण स्पर्श से गिरनार की पर्वतावली धन्य हुई। प्रणाम हैं, उन आत्माओं को भी जो यहाँ की पवित्र माटी का स्पर्श कर धन्य होते हैं। ●



अतीत का अवशेष



राजमती की गुफा



● शंखेश्वर

शंखेश्वर भारतवर्ष के जैन तीर्थ स्थलों में सर्वाधिक चमत्कारी सर्वसमादृत माना जाता है। शंखेश्वर और नाकोड़ा ये वे दो तीर्थ हैं जिनके बारे में प्रसिद्ध है कि यहाँ श्रद्धालुओं की मनोवांछाएं पूर्ण होती हैं। श्रद्धालुजन शंखेश्वर तीर्थ की आराधना के निमित्त तीन उपवास करते हैं, जिन्हें परंपरागत शब्दावली में 'तेला' या 'अट्टम' कहा जाता है। कहा जाता है कि अट्टम तप के साथ शंखेश्वर तीर्थ की गई आराधना संकटमोचक और सुख-समृद्धिकारक होती है।

शंखेश्वर यानी शंखों का अधिपति। पौराणिक उल्लेखों के अनुसार जरासंध और कृष्ण के बीच हुए युद्ध में जरासंध ने श्रीकृष्ण की सेना पर 'जरा' फेंकी तब इसी प्रभु-प्रतिमा के चरणाभिषिक्त जल के द्वारा जरा के प्रभाव को निर्मूल किया गया।

संवत् ११५५ में आचार्य देवेन्द्र सूरि की प्रेरणा से सिद्धराज जयसिंह के महामंत्री सज्जन शाह ने शंखेश्वर तीर्थ का जीर्णोद्धार करवाया। महामंत्री वस्तुपाल-तेजपाल ने आचार्य श्री वर्द्धमान सूरि के उपदेश से इस तीर्थ का आवश्यक नव-निर्माण करवाया तथा यहाँ परिनिर्मित बावन देवरियों के शिखर पर स्वर्णकलश अभिसिक्त किया। सं. १३०२ में राजा दुर्जनसल्य के द्वारा भी इस तीर्थ के जीर्णोद्धार का उल्लेख प्राप्त होता है।

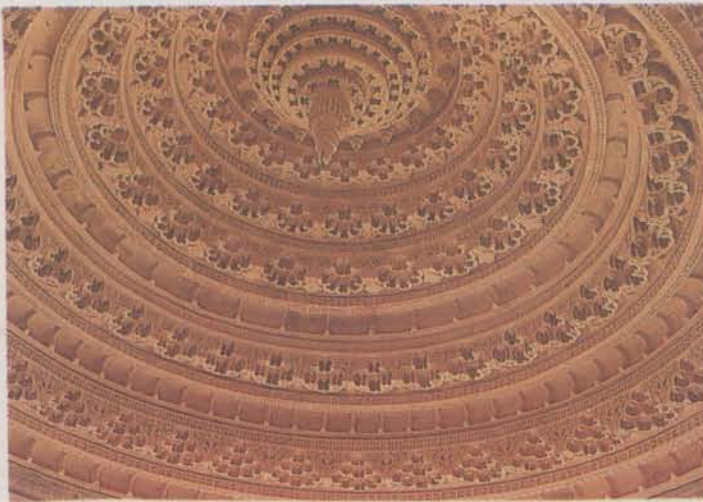
सम्राट अलाउद्दीन खिलजी के मंदिर-विरोधी अभियान एवं आक्रमणों के तहत इस मंदिर को भी भारी क्षति पहुंचाई गई, किन्तु



१०८ पार्श्वनाथ मंदिर भव्य दर्शन



उप-शिखर का मनोरम दर्शन



गुंबज का गहरा स्वरूप

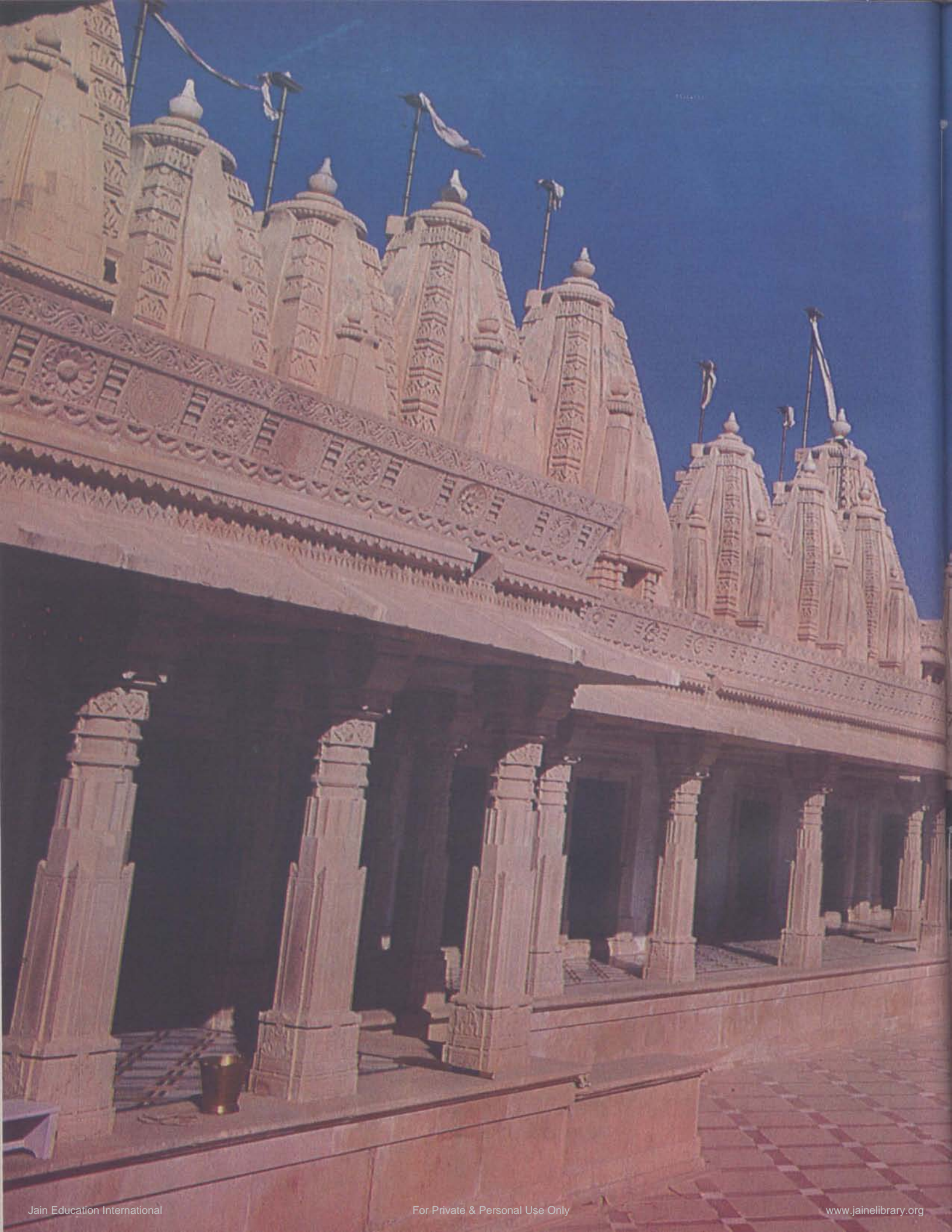


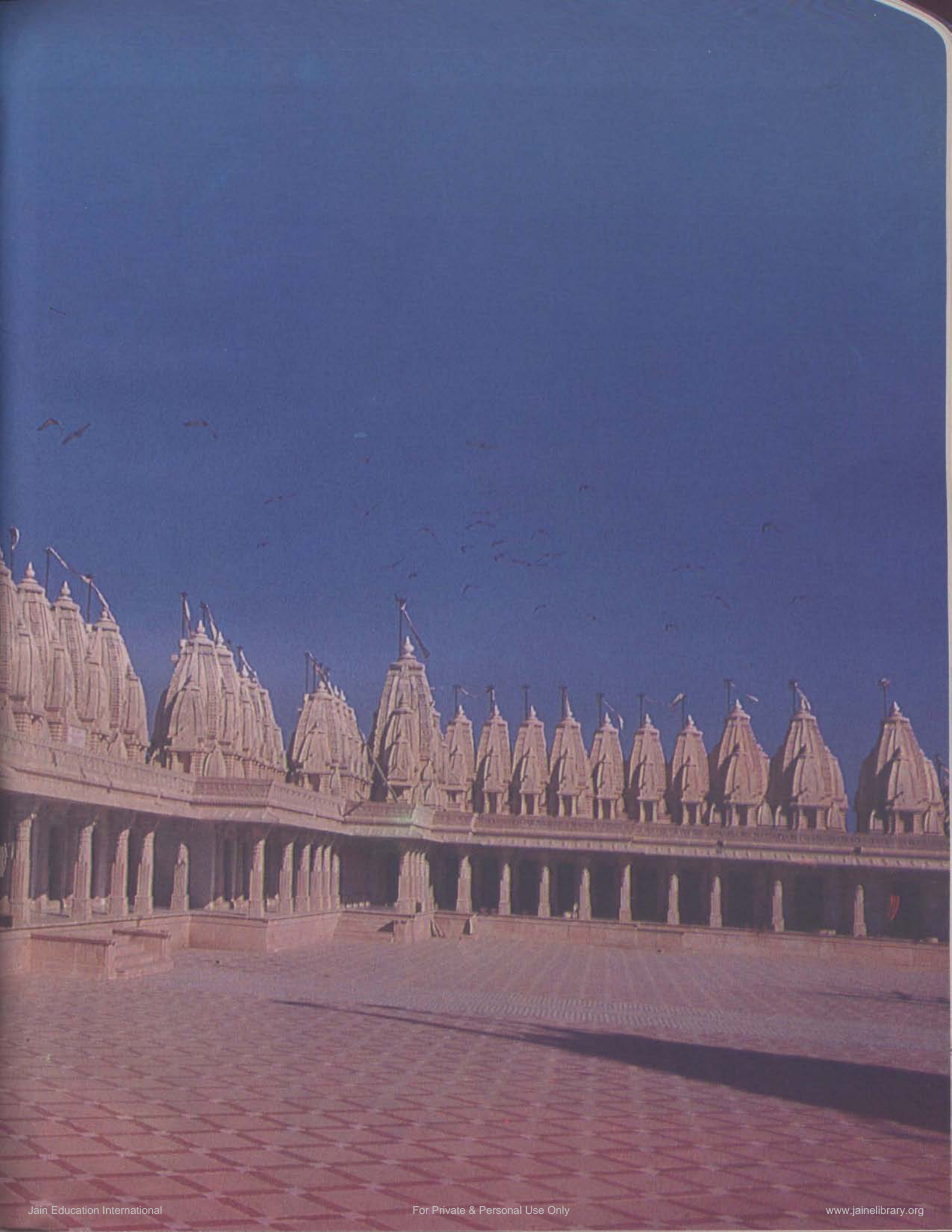
शंखेश्वर के शिखर

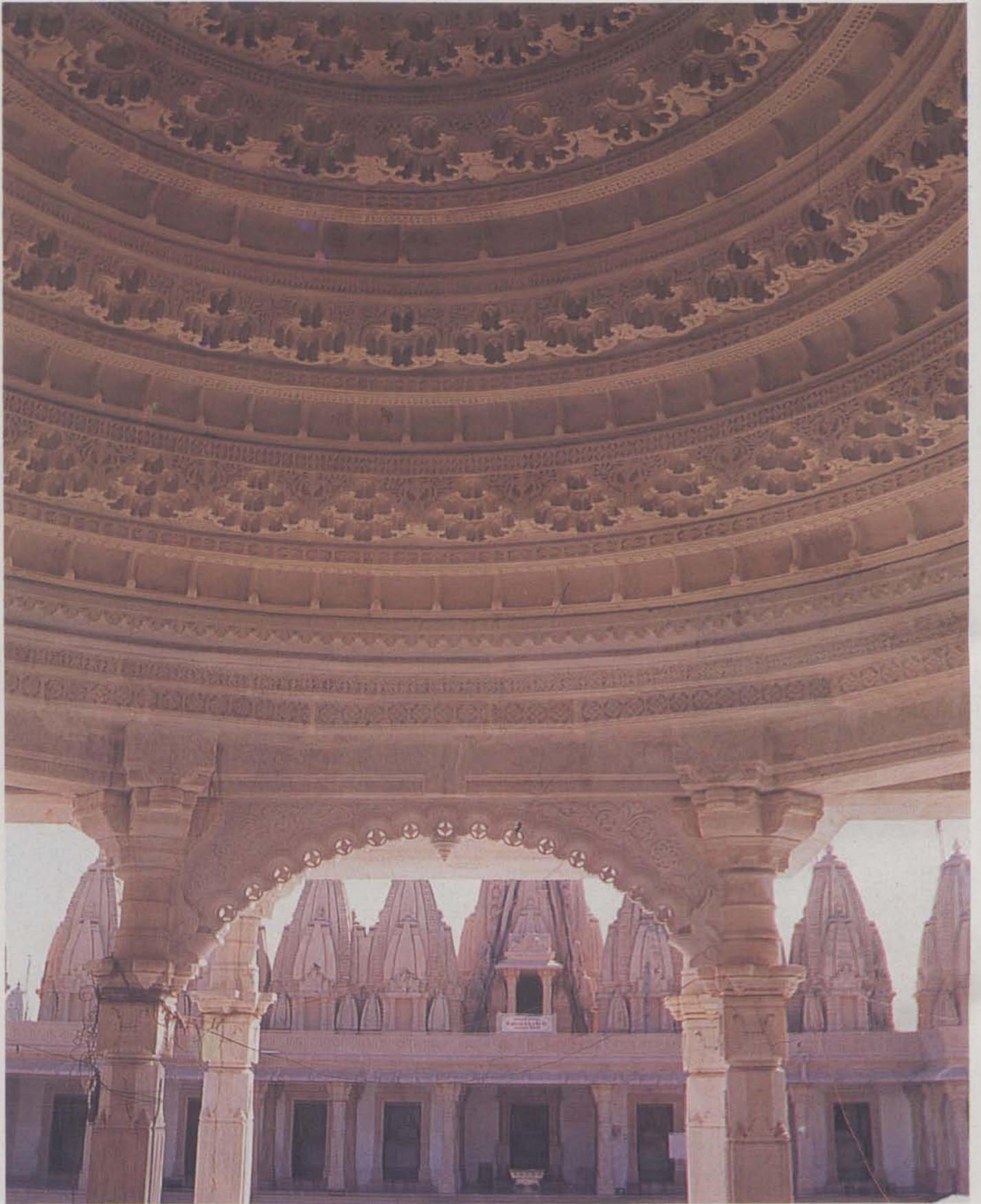


शंखेश्वर के शिखरों की भव्यता

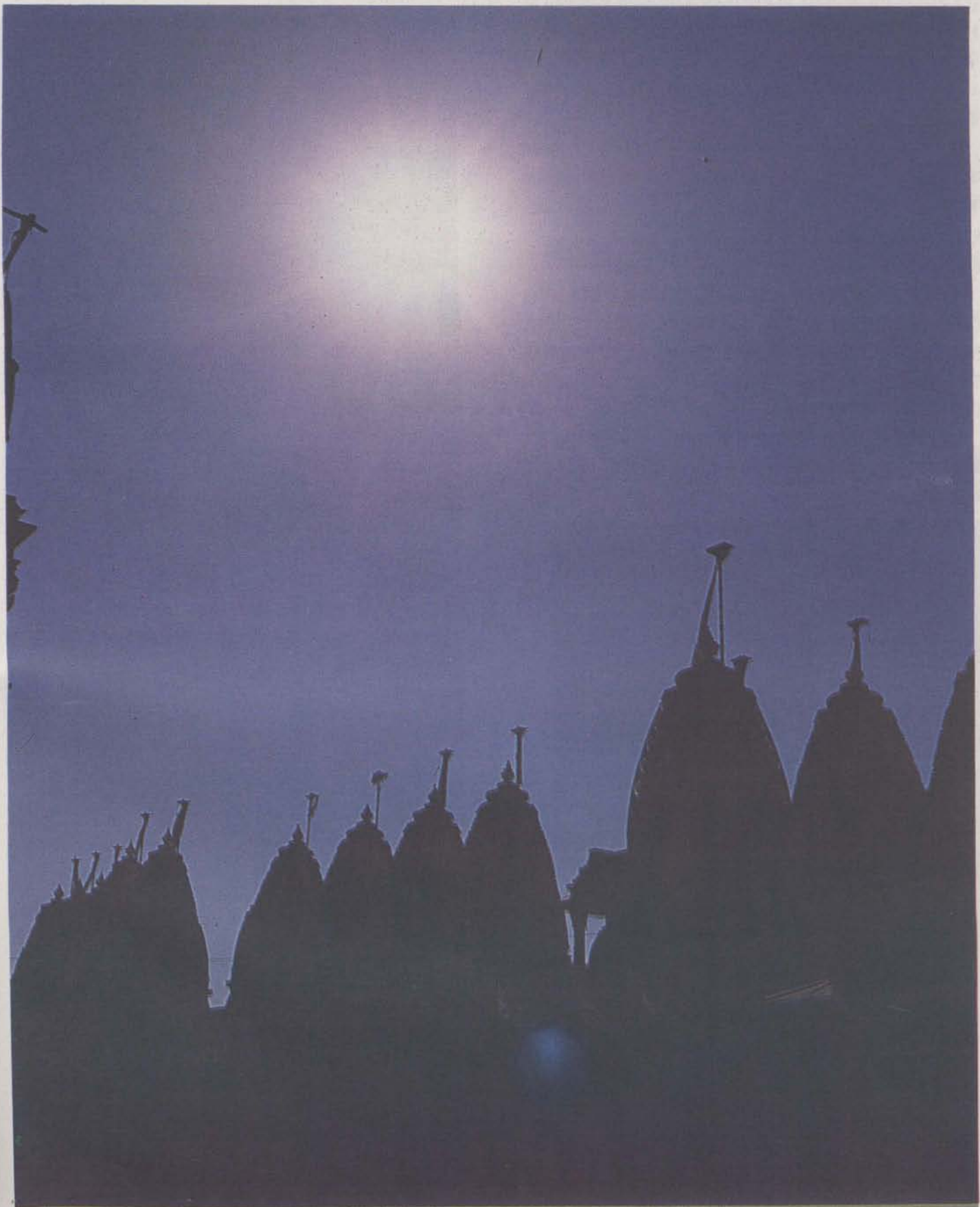
शिखरों की कतार→







गुंबज का एक भाग



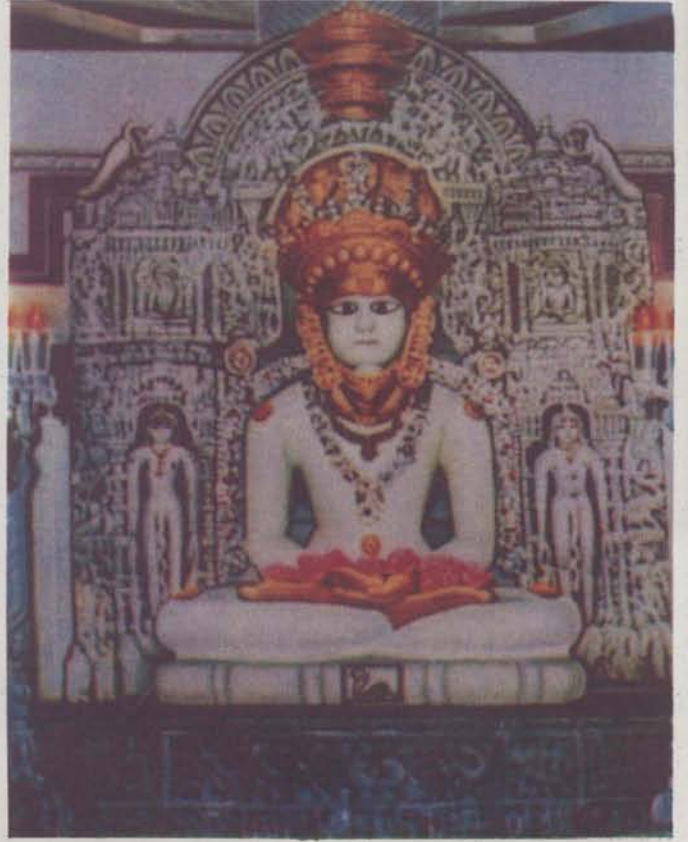
मंदिरों से ऐसी ही दिव्यता पाएं

संघ द्वारा प्रतिमा को पहले ही स्थानान्तरित कर दिया गया था। सं. १६५६ में बादशाह शाहजहां ने नगर-सेठ शांतिप्रसाद को फरमान जारी कर तीर्थ के निर्माण की स्वीकृति प्रदान की। सं. १७६० में आचार्य विजयरत्न सूरि के हस्ते पुनः प्रतिष्ठा होने का उल्लेख मिलता है।

शंखेश्वर तीर्थ के विशाल परकोटे में मूल मंदिर के अतिरिक्त कई देवरियां निर्मित हैं। इसी कारण इसे बावन जिनालय भी कहा जाता है। मंदिर के अंदर-बाहर कई मंदिर हैं, जिनमें आगम मंदिर, १०८ पार्श्वनाथ जिनालय, दादाबाड़ी इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं।

मूल तीर्थ-मंदिर विशाल परकोटे के मध्य भाग में ऐसा लगता है मानो यह धरती पर अवतरित हुआ देव-विमान हो। शिखरों पर लगी छोटी-मोटी घंटियां हवा के झोंकों के साथ स्वतः डोलायमान हो उठती हैं। घंटियों का निनाद संगीत का काम करते हुए श्रद्धालुओं के हृदय को झंकृत कर देता है।

शंखेश्वर तीर्थ सोयी मानवता को जागृति का संदेश देता है। जीवन की विपदाओं से छुटकारा पाने के लिए शंखेश्वर सर्व सुखों की खान है।



मूलनायक श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ



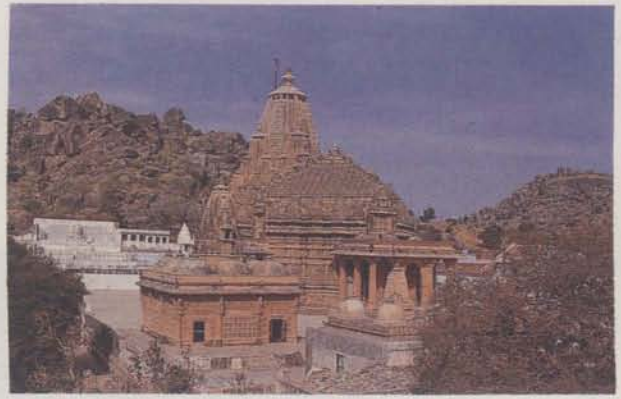
द्वारपालिका



पार्श्वनाथ की मनोरम प्रतिमा



अपराधीन के प्रति प्रतिक्रिया



जैन धर्म का अर्थ है 'अपराधीन'। यह शब्द संस्कृत में 'अ' (न) और 'पराधीन' (पराधीन) से मिलकर बना है। जैन धर्म के अनुयायी अपने आपको 'अपराधीन' मानते हैं, जो कि किसी भी प्रकार के पाप, दुष्टता या अन्याय से दूर रहने का प्रयास करते हैं।

जैन धर्म का अर्थ है 'अपराधीन'। यह शब्द संस्कृत में 'अ' (न) और 'पराधीन' (पराधीन) से मिलकर बना है। जैन धर्म के अनुयायी अपने आपको 'अपराधीन' मानते हैं, जो कि किसी भी प्रकार के पाप, दुष्टता या अन्याय से दूर रहने का प्रयास करते हैं।

जैन धर्म का अर्थ है 'अपराधीन'। यह शब्द संस्कृत में 'अ' (न) और 'पराधीन' (पराधीन) से मिलकर बना है। जैन धर्म के अनुयायी अपने आपको 'अपराधीन' मानते हैं, जो कि किसी भी प्रकार के पाप, दुष्टता या अन्याय से दूर रहने का प्रयास करते हैं।

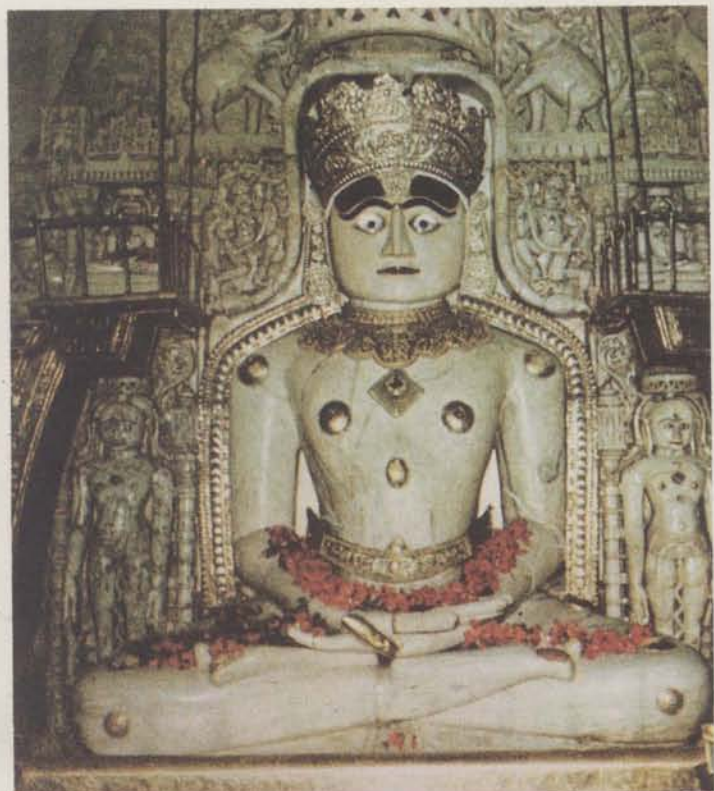
जैन धर्म का अर्थ है 'अपराधीन'। यह शब्द संस्कृत में 'अ' (न) और 'पराधीन' (पराधीन) से मिलकर बना है। जैन धर्म के अनुयायी अपने आपको 'अपराधीन' मानते हैं, जो कि किसी भी प्रकार के पाप, दुष्टता या अन्याय से दूर रहने का प्रयास करते हैं।

गुजरात की पावन भूमि में श्रद्धा और कला का अद्भुत समन्वय हुआ है। तारंगा तीर्थ इसका जीवन्त प्रमाण है। शहरों की कोलाहल भरी जिंदगी से दूर शांत-नीरव वातावरण में पर्वतों की गोद में बसे इस तीर्थ में पहुंचते ही आत्मशांति की अनुभूति तो होती ही है, मंदिर की कलात्मकता को निरखकर दर्शक अचंभित भी रह जाता है। मंदिर के बाह्य भाग में खड़े होकर अगर चारों ओर नज़र दौड़ाई जाये तो पर्वतों का अनूठा सौंदर्य दिखाई देता है और अगर मंदिर के भीतर प्रवेश किया जाये, तो परमात्मा की दिव्य प्रतिमा मुंह बोलती नजर आती है।

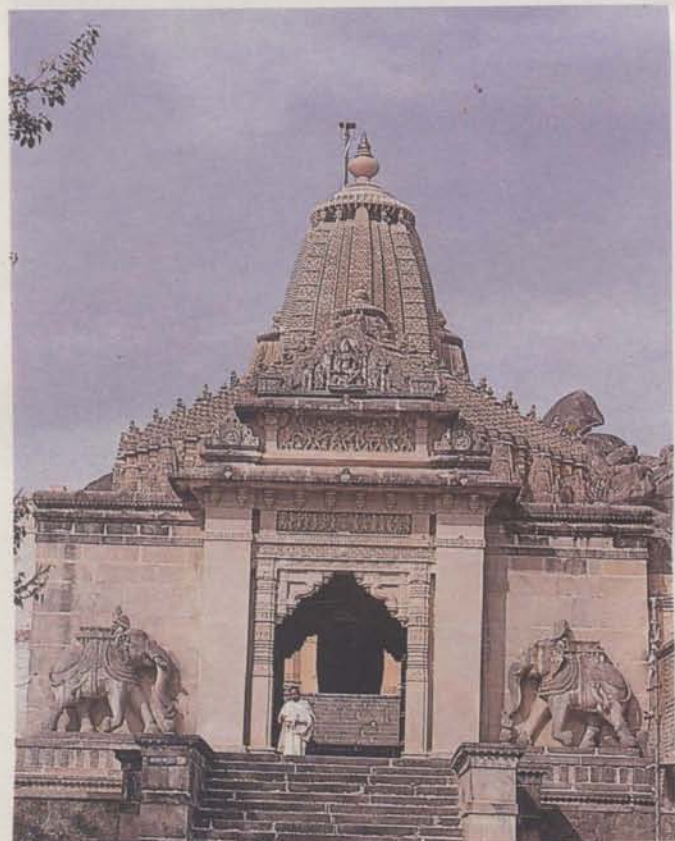
जैन-शास्त्रों में तारंगा के लिए 'तारउर', 'तारावर', 'तारणगिरी' आदि कई नाम उपलब्ध होते हैं। सं. १२४१ में आचार्य श्री सोमप्रभ सूरि द्वारा निर्मित कुमारपाल प्रतिबोध ग्रंथ में उल्लेख है कि राजा वत्सराय ने बप्पुटाचार्य की प्रेरणा से यहाँ श्रीसिद्धायिका देवी के मंदिर का निर्माण करवाया था। प्राप्त संदर्भों से ज्ञात होता है कि राजा कुमारपाल ने भी यहां सं. १२१२ में जिनालय का निर्माण करवाया था।

तीर्थ में उपलब्ध शिलालेखों से ज्ञात होता है कि सं. १२८४ में संघपति वस्तुपाल ने आदिनाथ भगवान की दो प्रतिमाएं विराजमान की थी। यद्यपि ये दोनों ही प्रतिमाएं आज तीर्थ-क्षेत्र में उपलब्ध नहीं हैं, पर उत्कीर्ण शिलालेख वाले दोनों ही आसन मंदिर में आज भी उपलब्ध हैं। सं. १४७९ में ईडर के श्री गोविंद सृष्टि द्वारा तीर्थ के उद्धार का उल्लेख प्राप्त होता है। तीर्थ का अंतिम जीर्णोद्धार आचार्य श्री विजयसेन सूरि की प्रेरणा से हुआ। इसके अतिरिक्त इस मंदिर में अन्य भी कई लोगों ने गोखलों और प्रतिमाओं का निर्माण करवाया है। मूल मंदिर १४२ फुट ऊंचा, १५० फुट लम्बा और १०० फुट चौड़ा है। रंगमंडप की विशालता दर्शनीय है। मंदिर में तीर्थकर श्री अजितनाथ की पद्मासन में श्वेतवर्णीय प्रतिमा विराजमान है। २.७५ मीटर की यह प्राचीन प्रतिमा आज भी अपनी तेजोमय आभा बिखेर रही है।

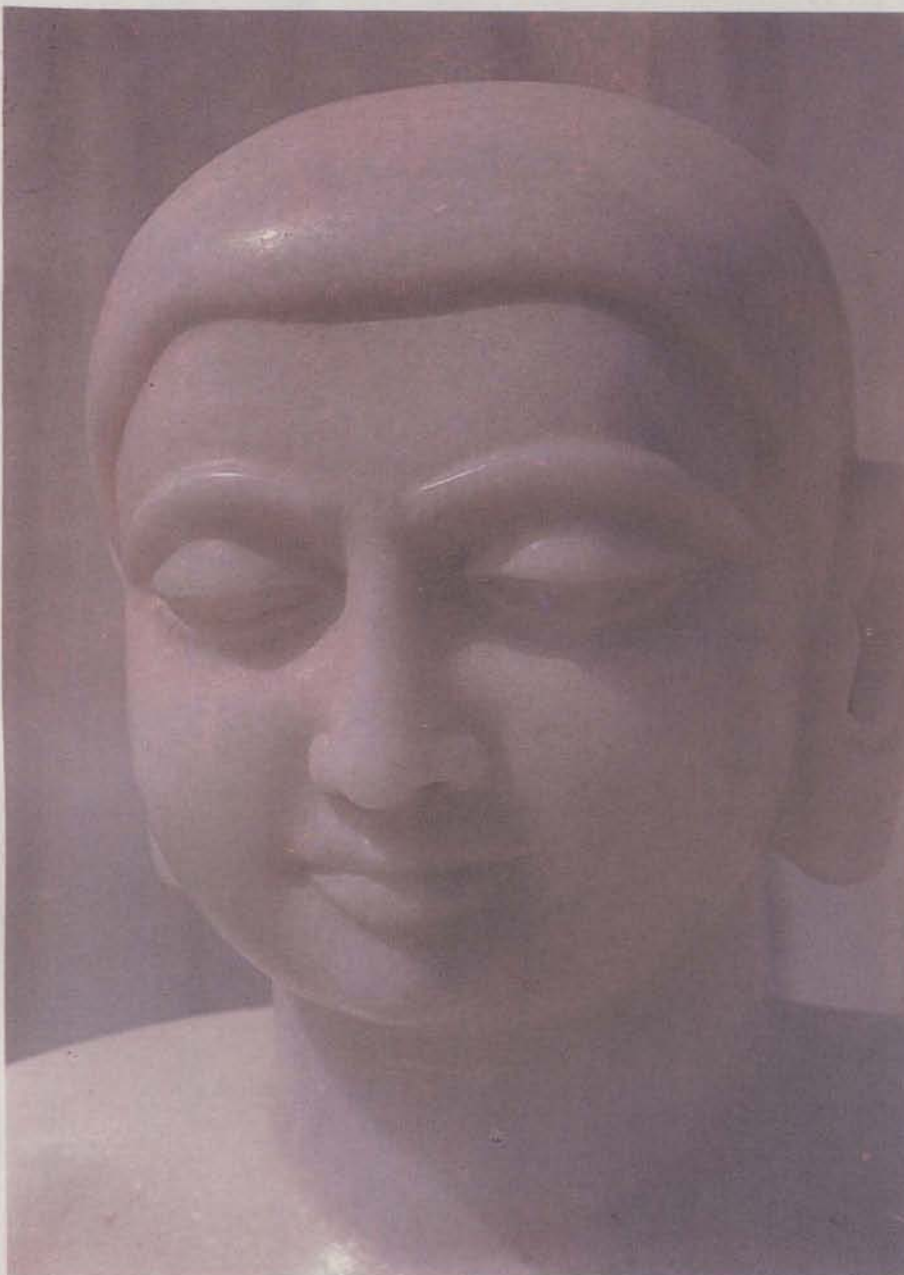
मूल मंदिर के दक्षिण दिशा में कोटि शिला है। यहाँ अनेक मुनियों ने आत्मसाधना कर मुक्ति पाई थी। मूल मंदिर के अतिरिक्त ४ श्वेताम्बर व ५ दिगम्बर मंदिर हैं। यहाँ से लगभग एक किलोमीटर दूर मोक्षबारी टूंक है, जहाँ तीर्थकर श्री अजितनाथ की प्रतिमा प्रतिष्ठित है। यहाँ सं. १२५५ में निर्मापित भगवान की प्रतिमा का भव्य परिकर है।



मूलनायक तीर्थकर श्री अजितनाथ

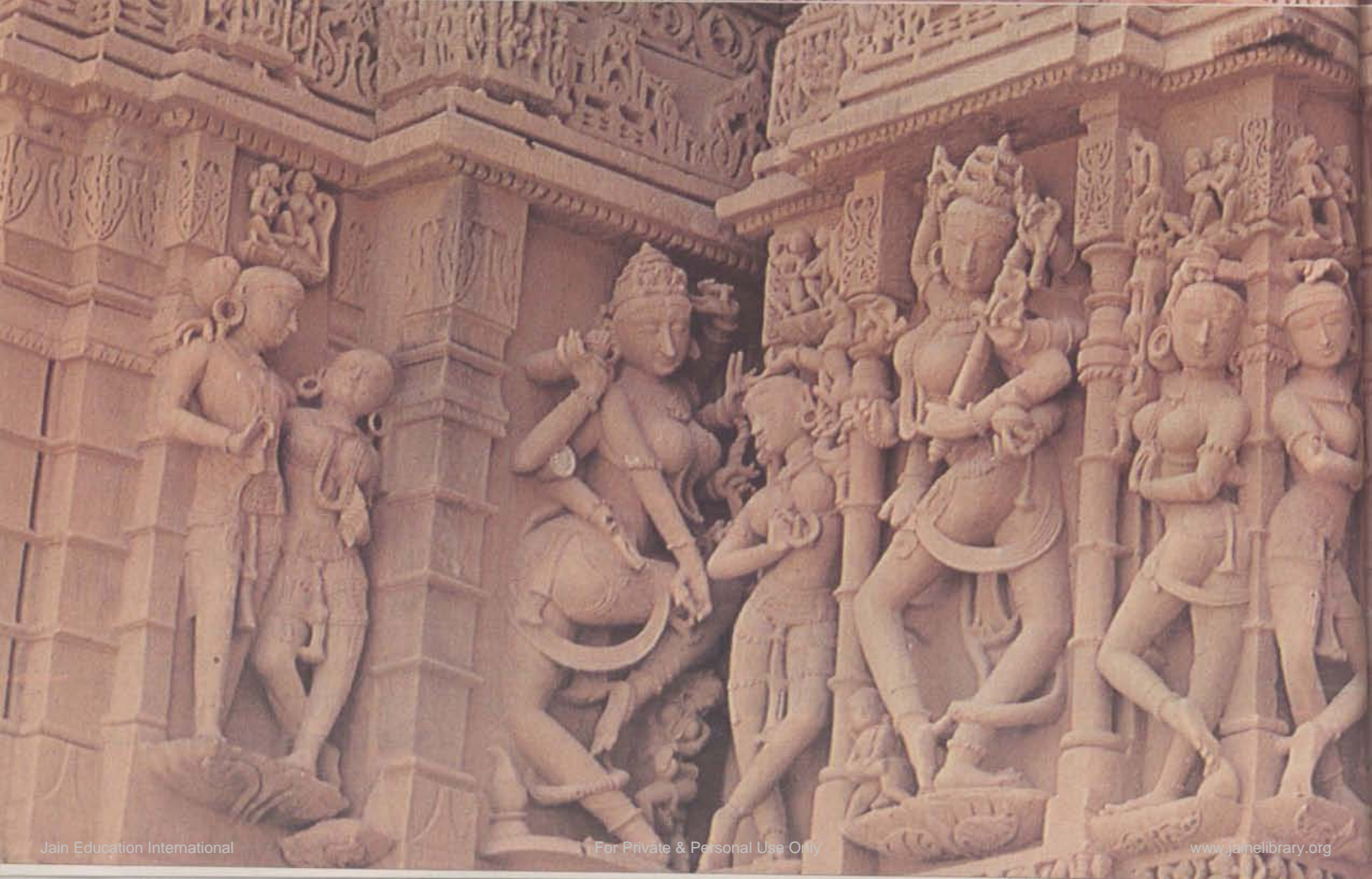
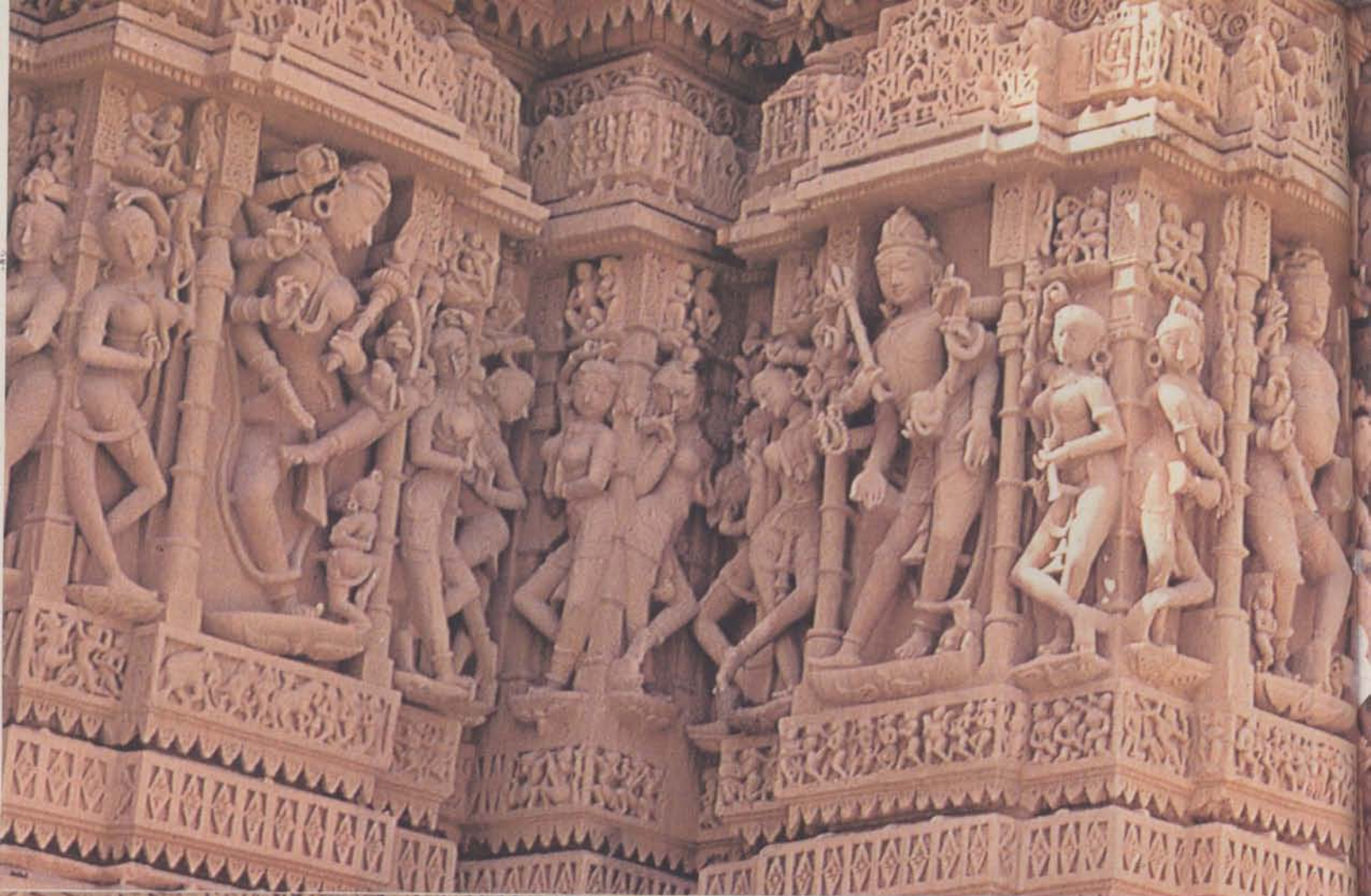


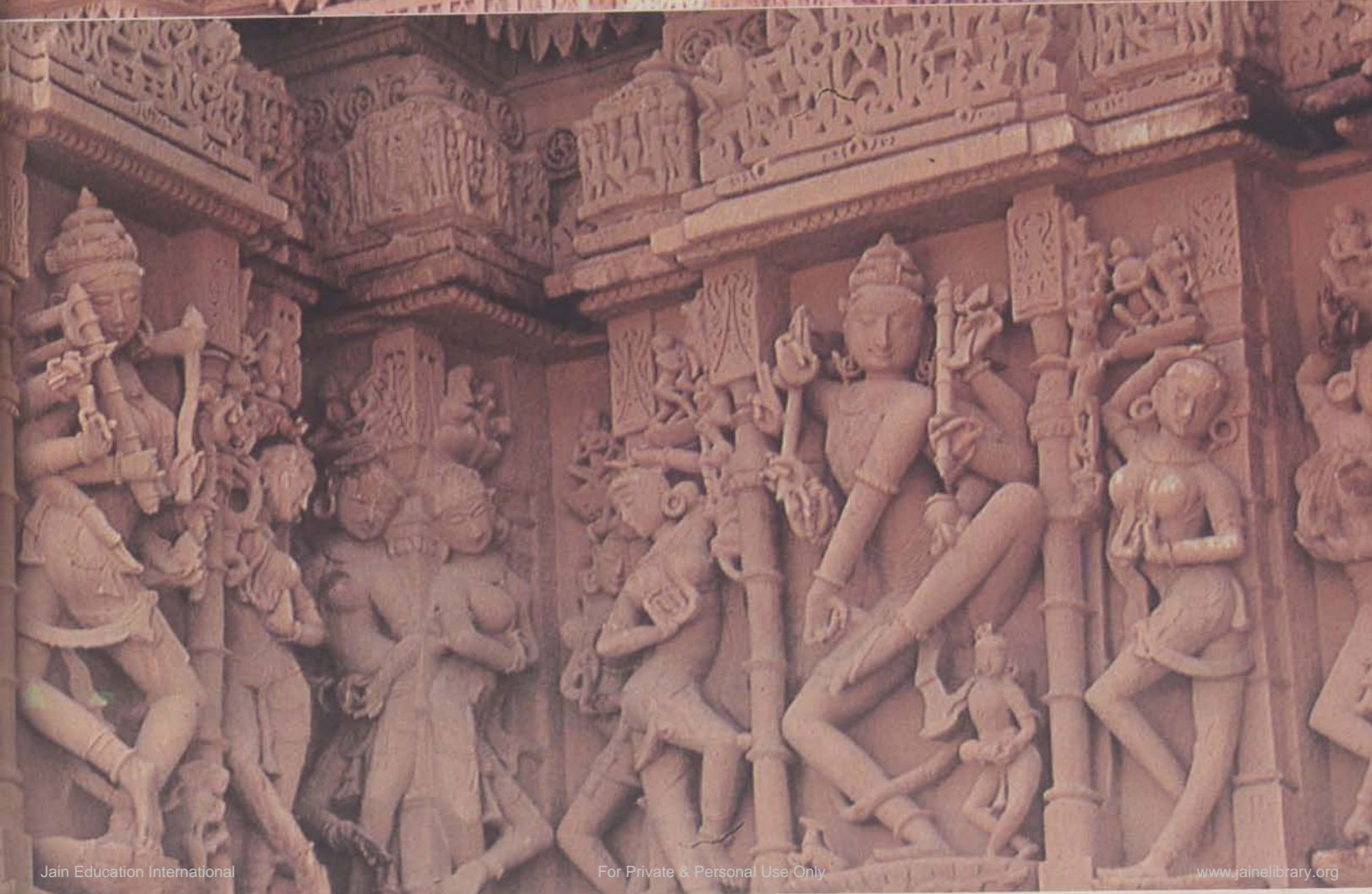
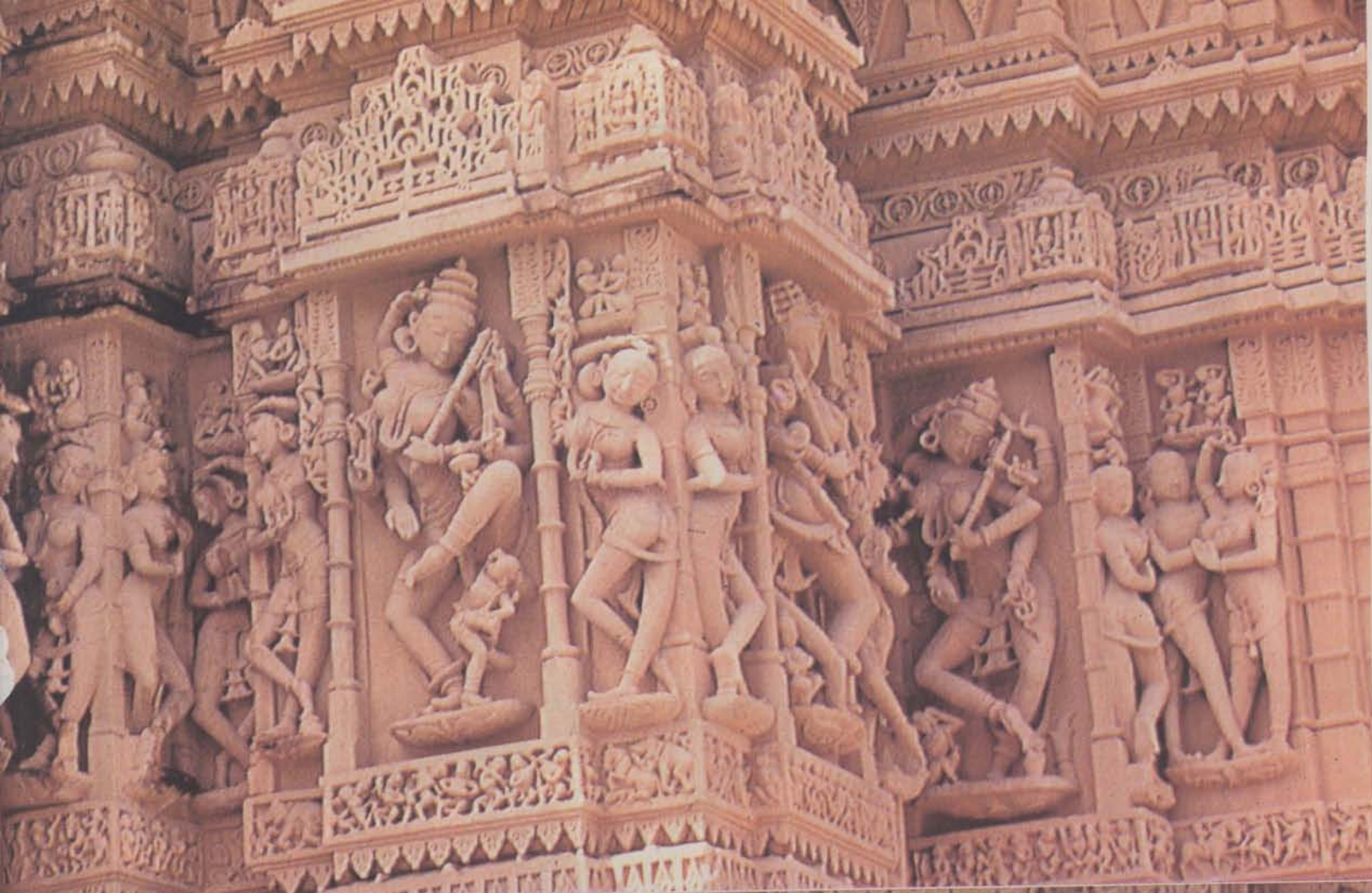
मंदिर का मुखभाग

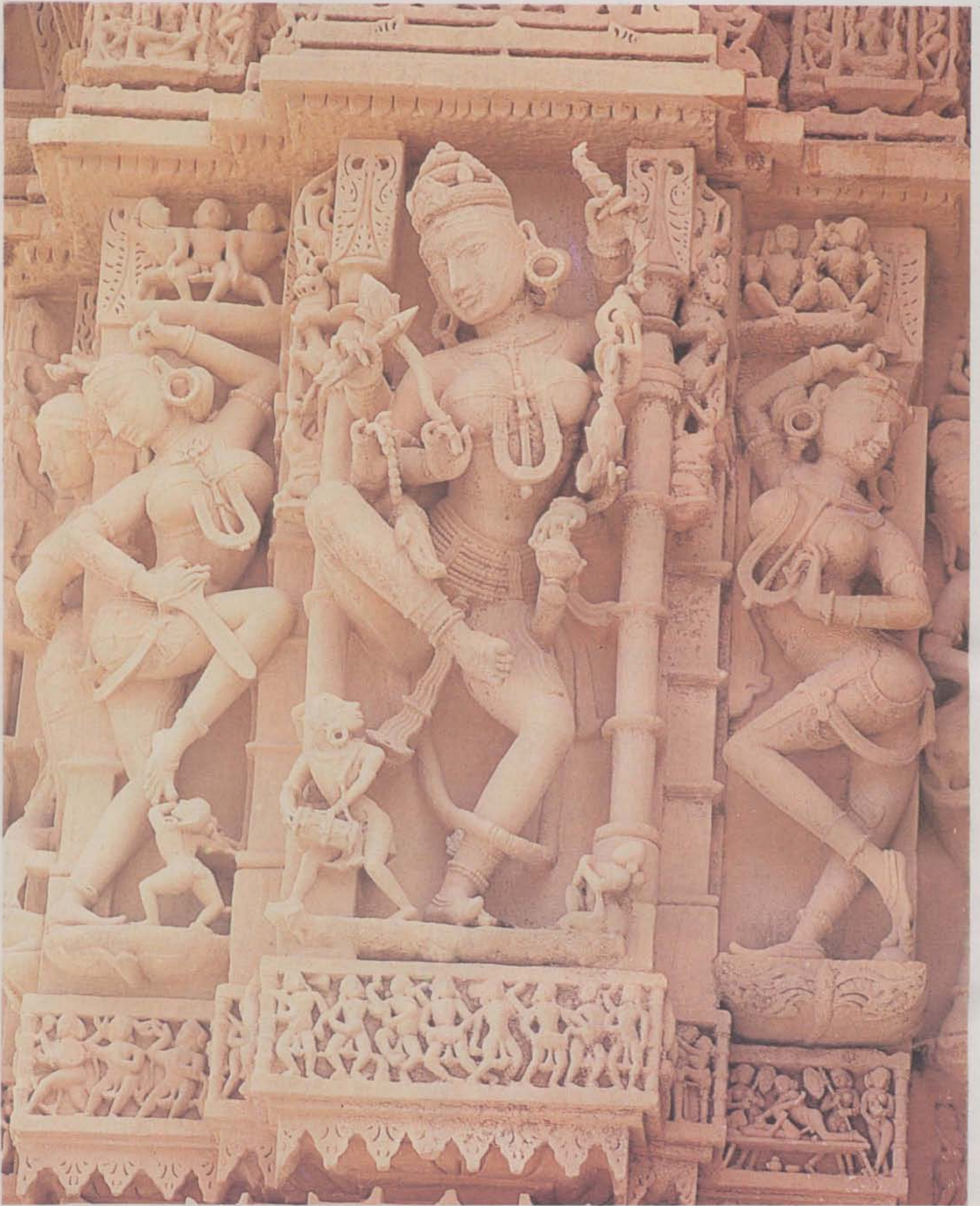


बाहुबली की मुखमुद्रा

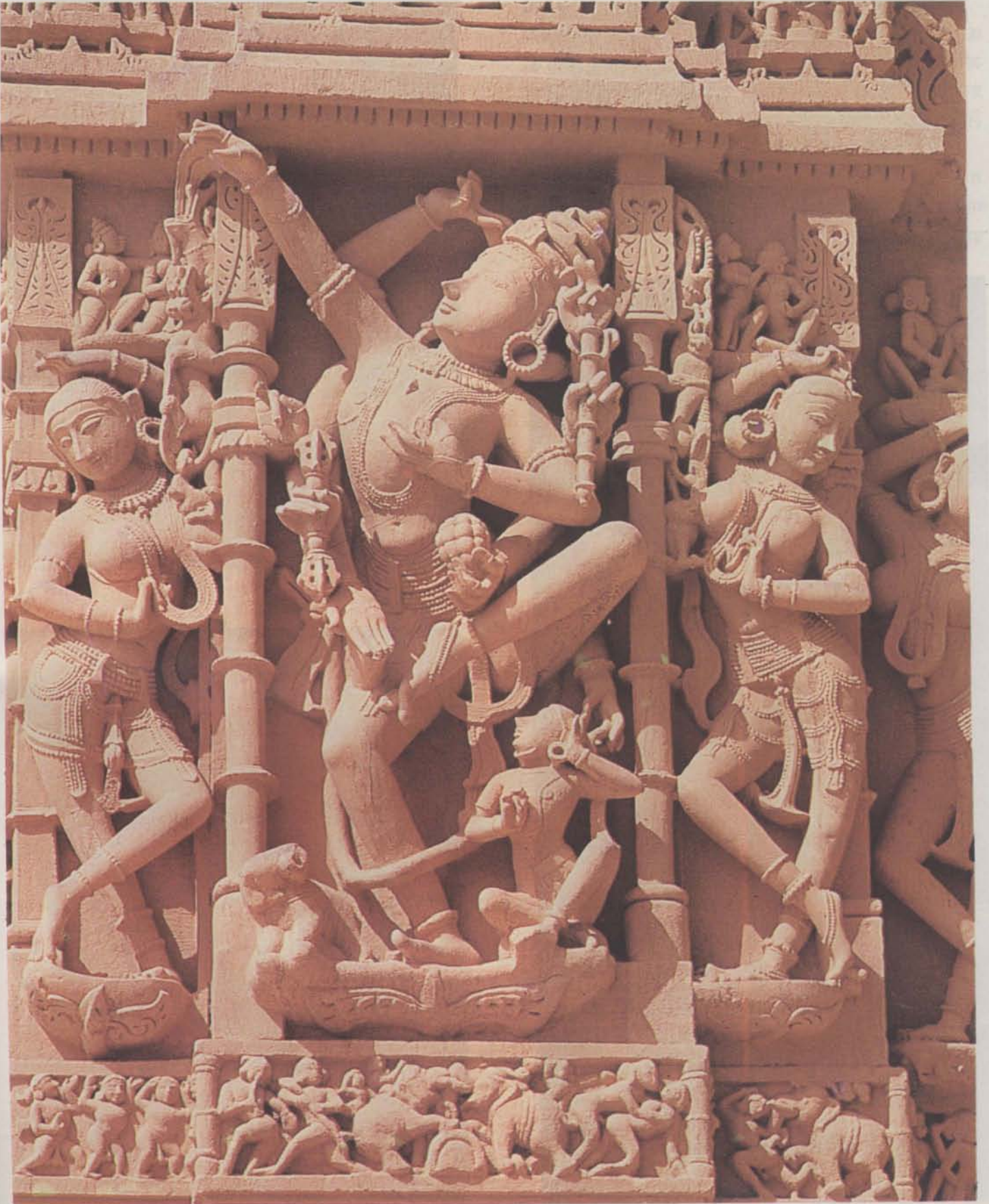
मंदिर का परिकर : नृत्यरत नृत्यांगनाएं→







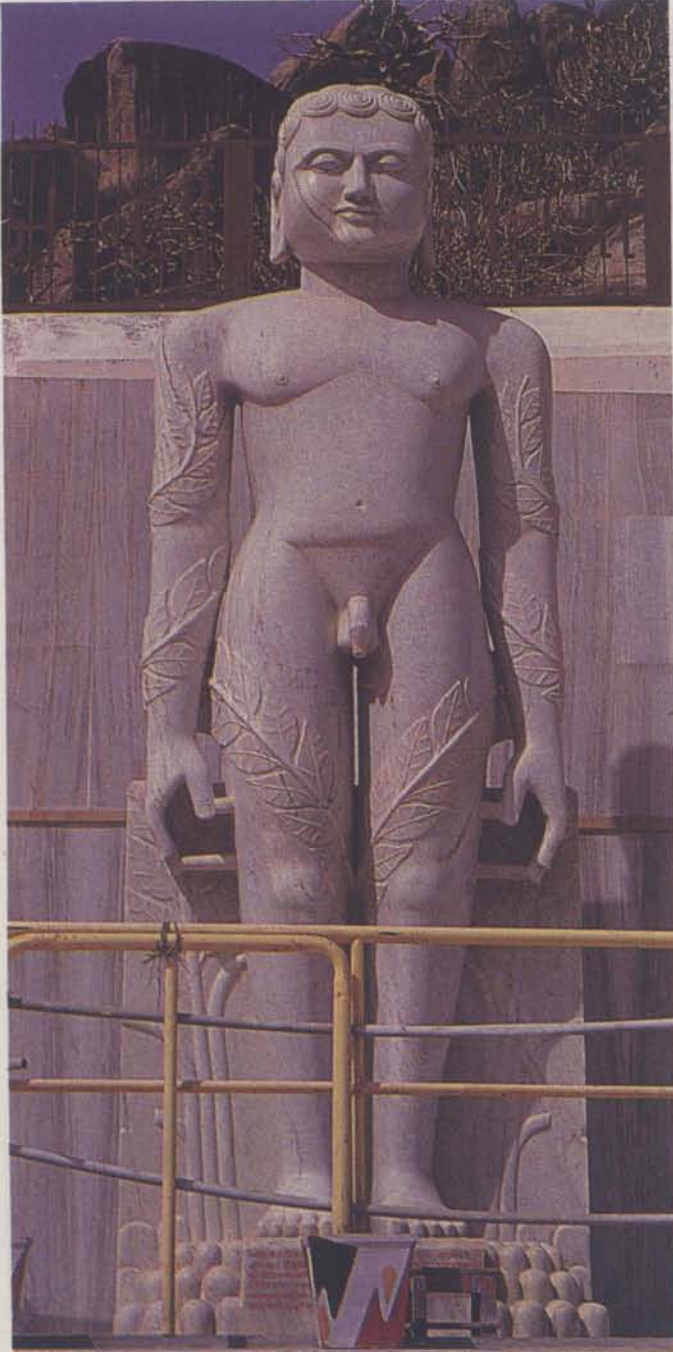
मंदिर का परिकर : बारीक नक्काशी



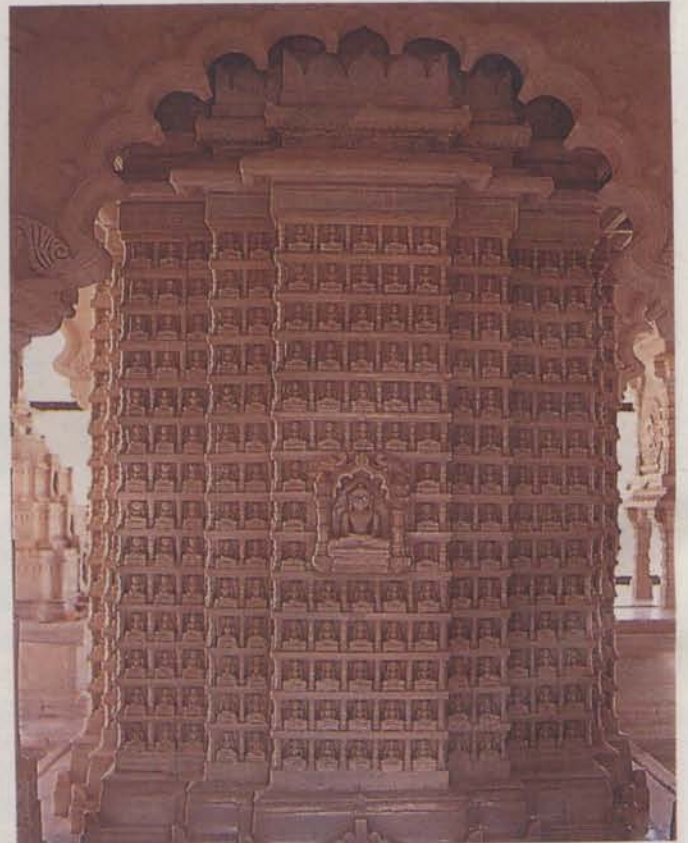
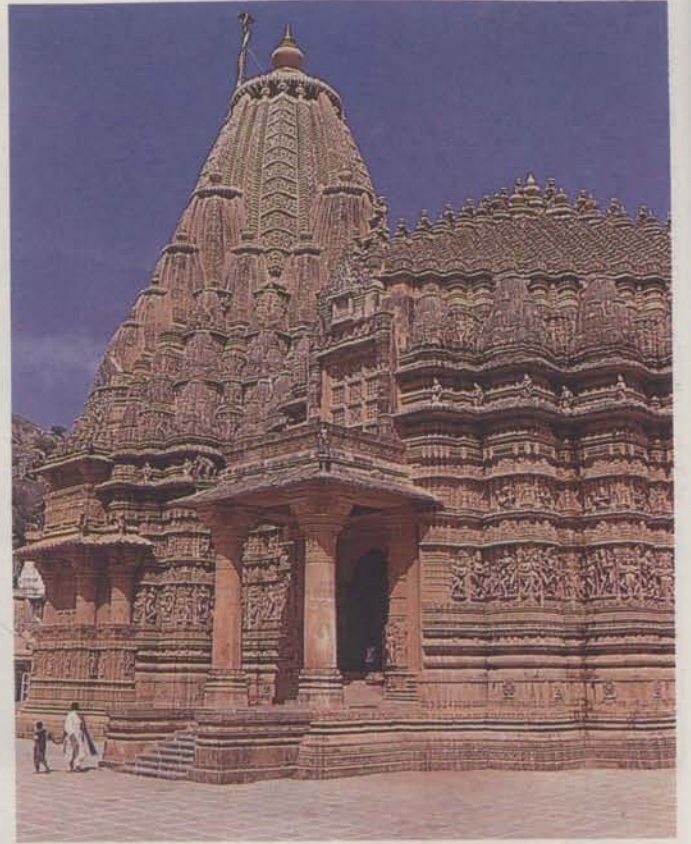
नृत्यांगनाएं: परिकर में कला की जीवंतता

मंदिर के परिकर में काल कि अद्भुत प्रस्तुति हुई है। नृत्य करती हुई देवांगनाओं का विविध रूप आंख, नाक एवं शरीर के अन्य अंगों के उत्कीर्णन में गुजरात के कलाकारों ने अपनी अनुठी कला की प्रस्तुति की है। परिकर में सैकड़ों नृत्यांगनाओं की मूर्तियां होंगी, लेकिन प्रत्येक प्रतिमा कला की दृष्टि से परस्पर भिन्न है।

यह चार मंजिला मंदिर चंदनवर्ण के पाषाण से निर्मित किया गया है। नयानाभिराम गंगनचुंबी शिखर को देखकर यों लगता है, मानो यह जंगल में मंगल का प्रतीक बनकर विश्व-शांति का संदेश प्रसारित कर रहा है।



प्रतिष्ठित हैं प्रतिमा में प्राण



श्री सहस्रकूट मंदिर



● मेहसाना

मेहसाना जैन धर्म का एक लोकप्रिय तीर्थ है। आचार्य श्री कैलाश सागर सूरि जी की प्रेरणा से निर्मित इस मंदिर की इमारतें दूर से ही दर्शकों का मन मोह लेती हैं। प्राचीनता की दृष्टि से इस नगर में निर्मित मंदिरों में ११वीं १२वीं शताब्दी के शिलालेख प्राप्त होते हैं किन्तु हम जिस तीर्थ मंदिर को विश्व के समक्ष प्रस्तुत करना चाह रहे हैं वह अर्वाचीन युग का अवदान है।

मेहसाना का श्री सीमन्धर स्वामी जैन तीर्थ मंदिर २०वीं सदी की देन है इस सदी में नए रूप से स्थापित तीर्थों में मेहसाना तीर्थ का नाम सर्वोपरि है। मंदिर का निर्माण हुए कोई बहुत वर्ष नहीं बीते हैं पर जिस गति से इस मंदिर ने तीर्थ का रूप धारण किया है वह अपने आप में एक आश्चर्य है।

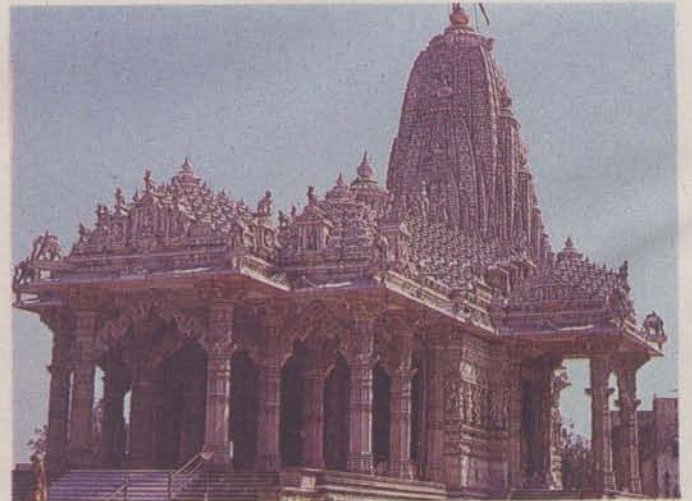
जैन मंदिरों में भरत क्षेत्र में हुए तीर्थकरों की प्रतिमाएं विराजमान रहती हैं। किन्तु इस मंदिर में भगवान श्री सीमन्धर स्वामी की विशालकाय प्रतिमा प्रतिष्ठित है जो इस समय महाविदेह क्षेत्र में विहार करते हैं। महाविदेह क्षेत्र भरत क्षेत्र की तरह ही एक अन्य क्षेत्र है जहां इस समय भी तीर्थकरों का जन्म, कैवल्य और निर्वाण सम्पन्न होता है।

भगवान श्री सीमन्धर स्वामी के मंदिरों में यह मंदिर सबसे बड़ा माना जाता है। बड़े ही सुन्दर संयोजन एवं कलात्मक प्रस्तुति के साथ मंदिर का निर्माण किया गया है वह अपने आप में औरों के लिए आदर्श है। मंदिर की भव्यता और शिल्प से अभिमण्डित विशालकाय प्रतिमा एक ही नजर में पर्यटकों तथा श्रद्धालुओं को वशीभूत कर लेती हैं।

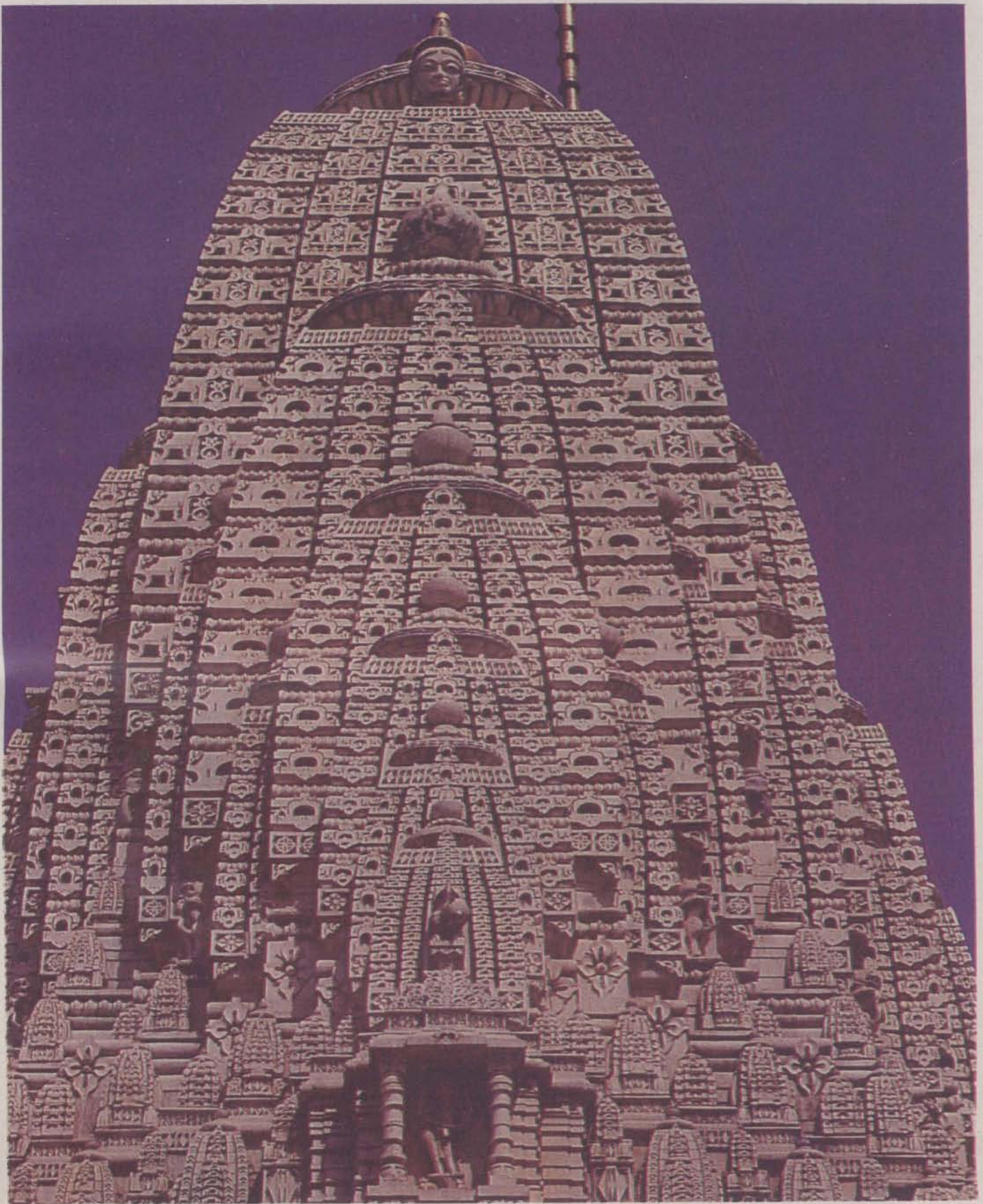
इस मंदिर के अलावा नगर में १४ अन्य मंदिर भी हैं। जब कभी अवसर मिले मेहसाना तीर्थ का अवलोकन जरूर कर लेना चाहिए।



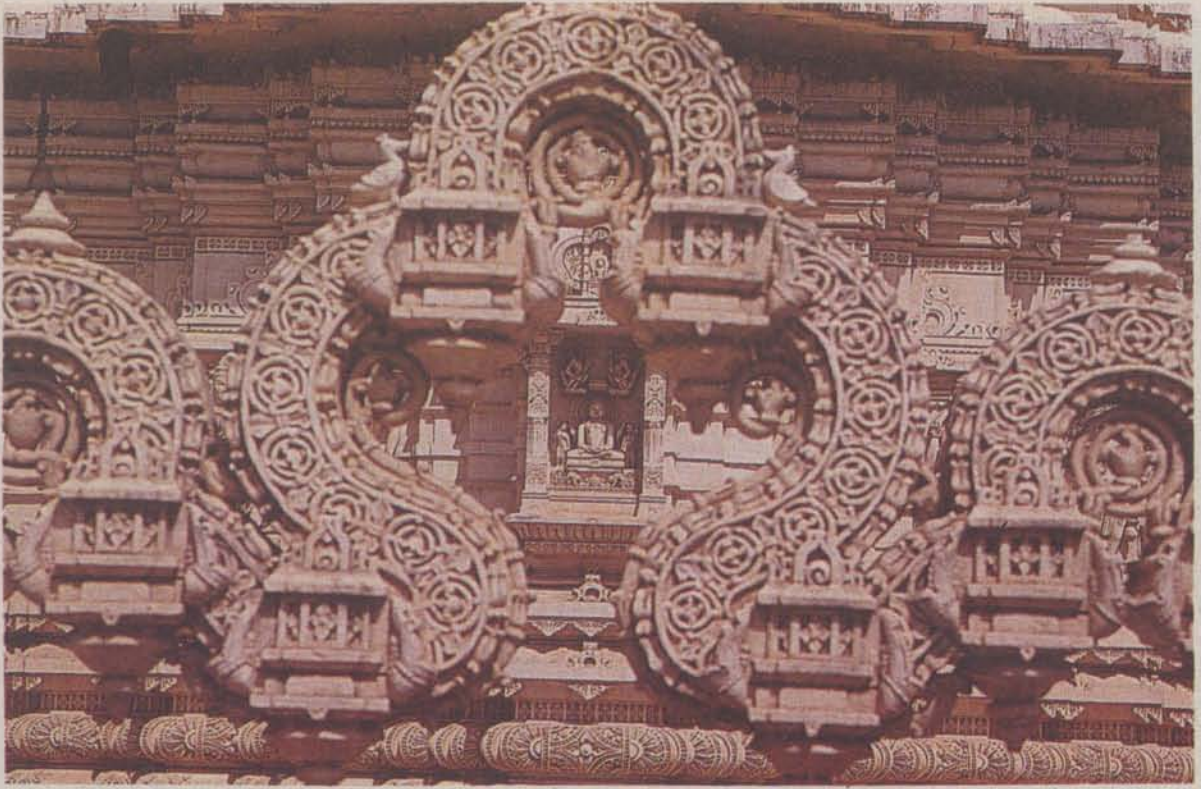
मूलनायक श्री सीमन्धर स्वामी



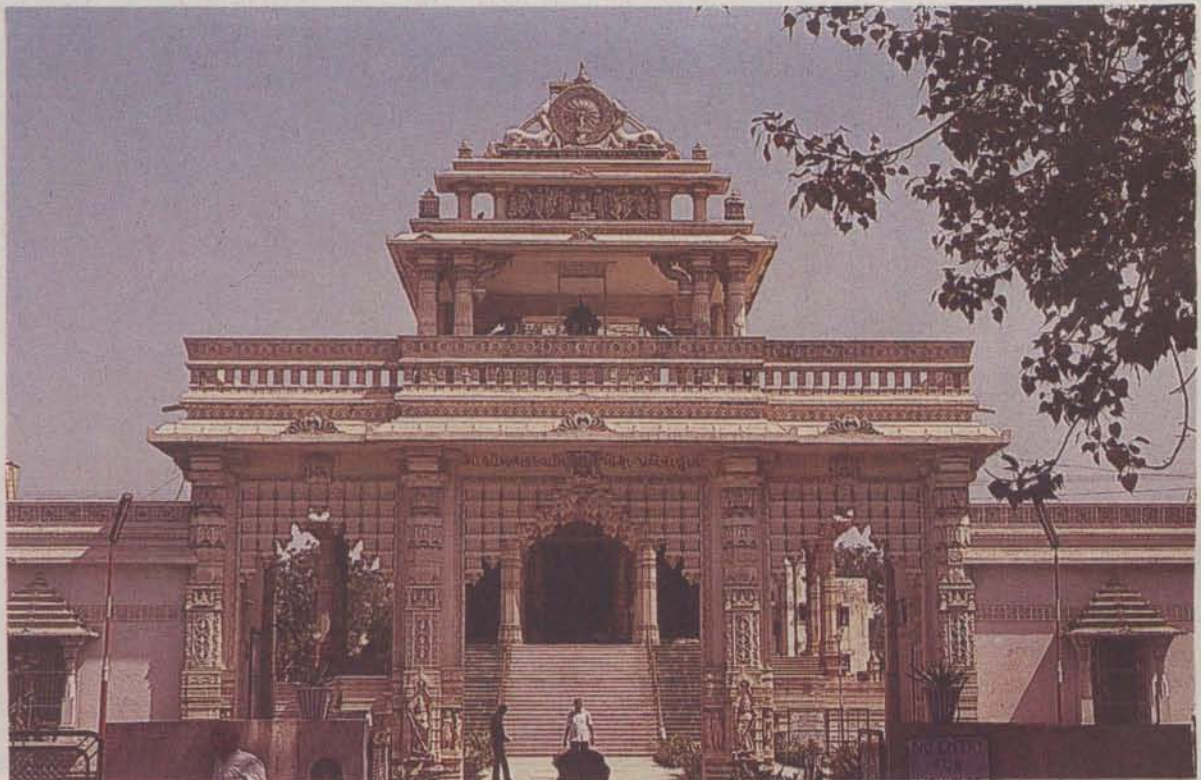
मंदिर का अभिमुख



मंदिर का भव्यतम शिखर



परिक्रमा का एक भाग



तीर्थ का प्रवेशद्वार



● पालीताना

पालीताना श्रद्धा और कला की दृष्टि से जैन-धर्म का सर्वोपरि तीर्थ-स्थल है। देश के हर राज्य में जैन-धर्म के पावन तीर्थ-स्थल हैं, किन्तु हर तीर्थ की नाक पालीताना की ओर है। यहां अनगिनत सन्तों, महात्माओं और श्रावकों ने महानिर्वाण को उपलब्ध किया है। इस तीर्थ के कण-कण में समाधि और कैवल्य की आभा है। यहां का कंकर-कंकर शंकर है। इस तीर्थ की माटी का हर कण अपने-आप में एक पवित्रतम मंदिर है। यहां की माटी को अपने शीष पर चढ़ाना भव-भव के पापों को नष्ट कर डालने का आधारभूत अनुष्ठान है।

कहा जाता है पालीताना की मिट्टी को अपने शीष पर चढ़ाने के लिए देवतागण भी तरसते हैं। मनुष्य तो क्या, देव भी कृत्-कृत्य हो जाते हैं, यदि उन्हें पालीताना तीर्थ की यात्रा का अवसर मिल जाये। वस्तुतः पालीताना तो वह तीर्थ है, जहां देवों का दिव्यत्व हर दिशा में देखा जा सकता है। किसी के मन में चाहे कैसी भी चिंता क्यों न हो, पालीताना वह धाम है जहाँ श्रद्धालु हर चिंता से मुक्त, निश्चिन्त हो जाता है।

शायद ही ऐसा कोई जैन हो जिसने जीवन में पालीताना की एक बार यात्रा न की हो। यह माना जाता है कि जिसने पालीताना और सम्मत शिखर इन दो तीर्थों की यात्रा न की, उसका जैन कुल में जन्म लेना व्यर्थ गया। जैन-धर्म का सर्वाधिक सर्वोपरि तीर्थ, स्थल होने के कारण यहाँ तीर्थ-यात्रियों की सदा भरमार रहती है। इस तीर्थ की दिव्यता और भव्यता का लेखा-जोखा संसार के हर राष्ट्र तक पहुँचा हुआ है। सामान्य तौर पर पर्यटक घूमने के लिए भारत आया करते हैं, किन्तु पालीताना वह पावन धाम है, जहाँ अपने श्रद्धा-सुमन समर्पित करने के लिए पर्यटक यहाँ पहुँचते हैं।

पालीताना जैन धर्म के पूज्य साधु-साध्वीवृंद का सबसे बड़ा केन्द्र-स्थल है। शायद ही अन्य कोई ऐसा नगर या तीर्थ हो, जहाँ जैन साधु-साध्वियों की इतनी विपुल संख्या मिलती हो। साधु-साध्वी स्वयं एक जंगम तीर्थ है, इस दृष्टि से पालीताना की यात्रा जंगम और स्थावर दोनों दृष्टि से महान् पुण्यकारी मानी जाती है।

इस तीर्थ पर जिधर भी नजर घुमाओ, वहाँ मंदिर या धर्मशालाएं ही दिखाई देती हैं। सैकड़ों मंदिर और सैकड़ों धर्मशालाएं इस तीर्थ की विशेषताओं में प्रमुख हैं। पालीताना नगर के करीब ५ कि. मी. के प्रमुख मार्ग पर धर्मशालाओं और विश्राम-स्थलों की लम्बी कतार है। मार्ग में ठौर-ठौर पर पावन जिनालय भी निर्मित हैं, लेकिन जिसे हम तीर्थ कहें उसका प्रारंभ पालीताना की तलहटी से होता है। इस तलहटी



मंदिर का हिमालयी शिखर



गगनचुम्बी शिखर



मंदिर ही मंदिर

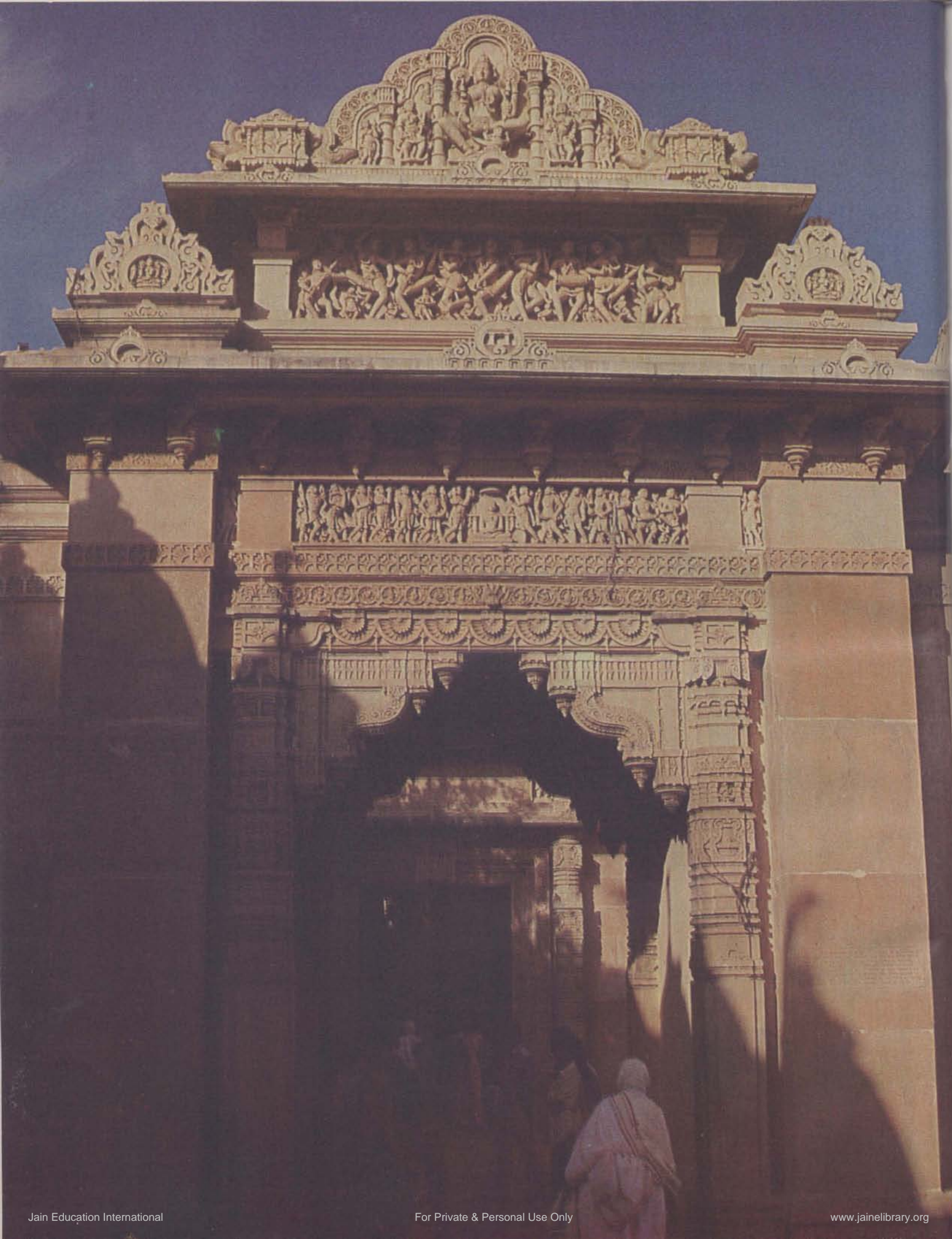


तीर्थ के अधिनायक तीर्थंकर श्री आदिनाथ



रायण रूख : आदिनाथ की साधना-स्थली

सूरज पोल : मुक्ति का द्वार→





शिखर-समूह



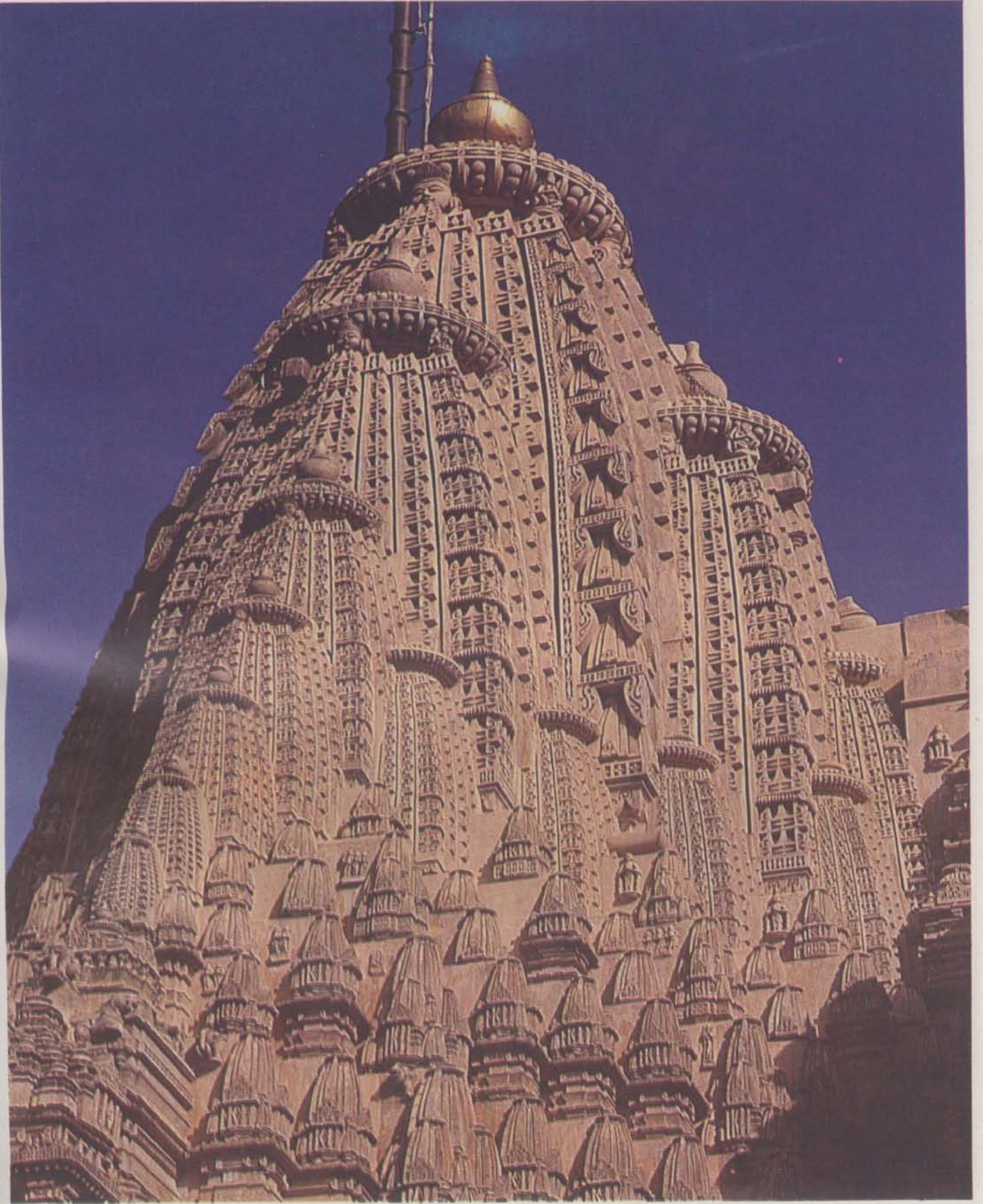
तलहटी में स्थित केशरियानाथ मंदिर



शत्रुंजय : डगर-डगर पर मंदिर



मोती शाह सेठ की टूंक : मंदिरों का उपनगर



भव्य शिखर

पर कदम रखते ही श्रद्धालुगण भावाभिभूत हो जाते हैं। उन्हें इस महातीर्थ की यात्रा का परम सौभाग्य प्राप्त हुआ है, इस बात से उनका हृदय परमात्मा की कृपा के प्रति कृतज्ञ हो जाता है।

पालीताना तीर्थ को एक प्रकार से मंदिरों का नगर कहा जाता है। जिस एक तीर्थ पर ८६१३ मंदिर और लगभग ३३ हजार मूर्तियां हों, भला उस तीर्थ की तुलना किससे की जाये। सचमुच, ऐसा स्थान तो तीर्थों का तीर्थ है, हर उपमा से ऊपर-अनुपम है। पालीताना की तुलना में केवल पालीताना को ही रखा जा सकता है। सम्पूर्ण विश्व में यही एकमात्र ऐसा पर्वत है जहां इतने मंदिर हैं।

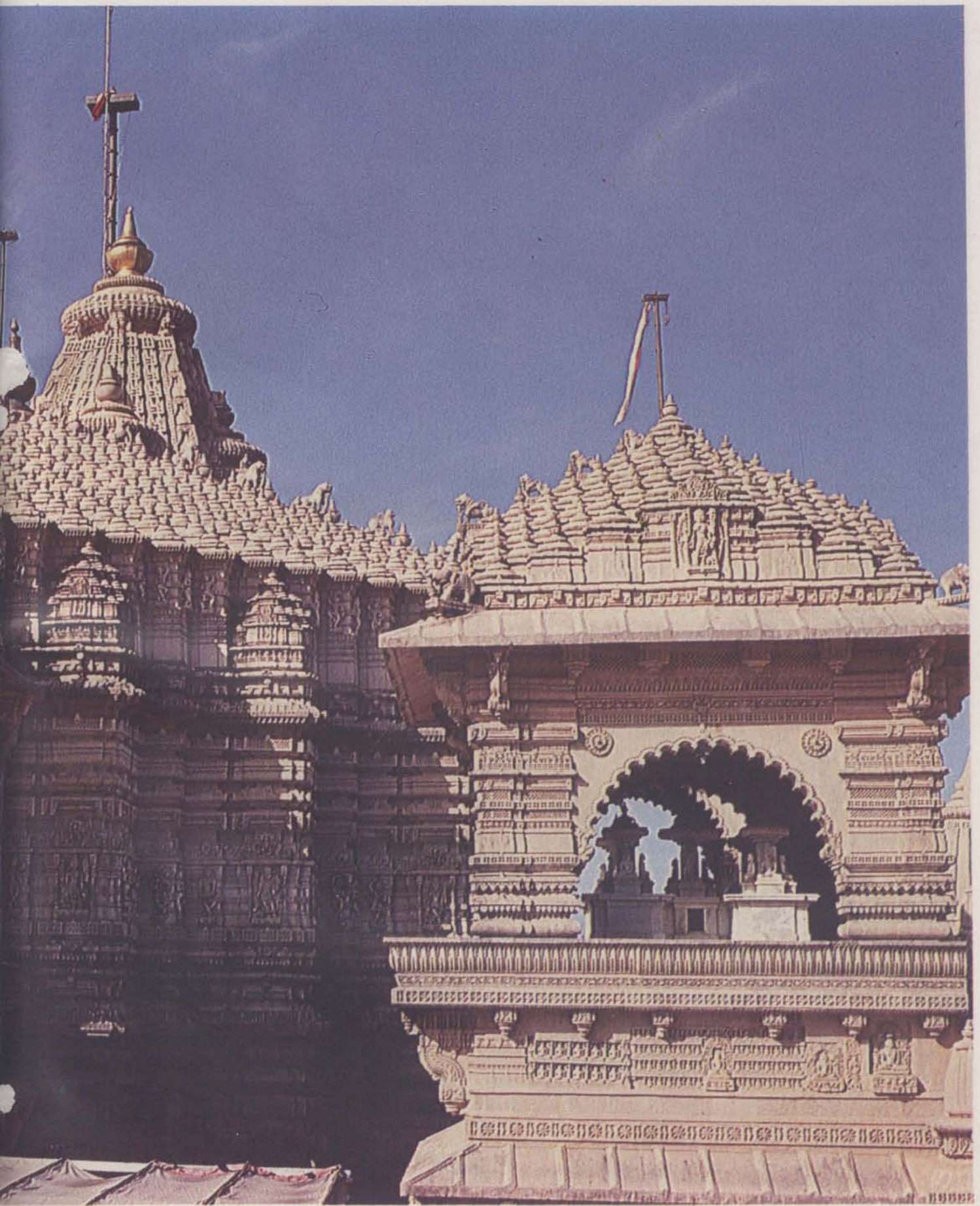
पर्वतमालाओं पर सुशोभित इस तीर्थ पर श्रद्धा एवं कला का ऐसा अद्भुत संगम हुआ है कि मानो जैन-धर्म के प्रति आस्था रखने वाले सज्जनों का धार्मिक वैभव अपनी सम्पूर्ण श्रद्धा तथा भक्ति के साथ मुखर हो उठा हो। पर्वत पर निर्मित नौ टूकों में मोतीशाह सेठ की टूक मंदिरों की जिस भव्यता को लिए हुए खड़ी है, उसकी तुलना आखिर किससे की जा सकती है? दुर्गम पहाड़ों के बीच इतने विशालकाय पाषाणों को ले जाना भी कितना कठिन रहा होगा, लेकिन जब श्रद्धा सिर चढ़कर बोलती है, तो असंभावित कार्य भी संभावित हो जाते हैं।

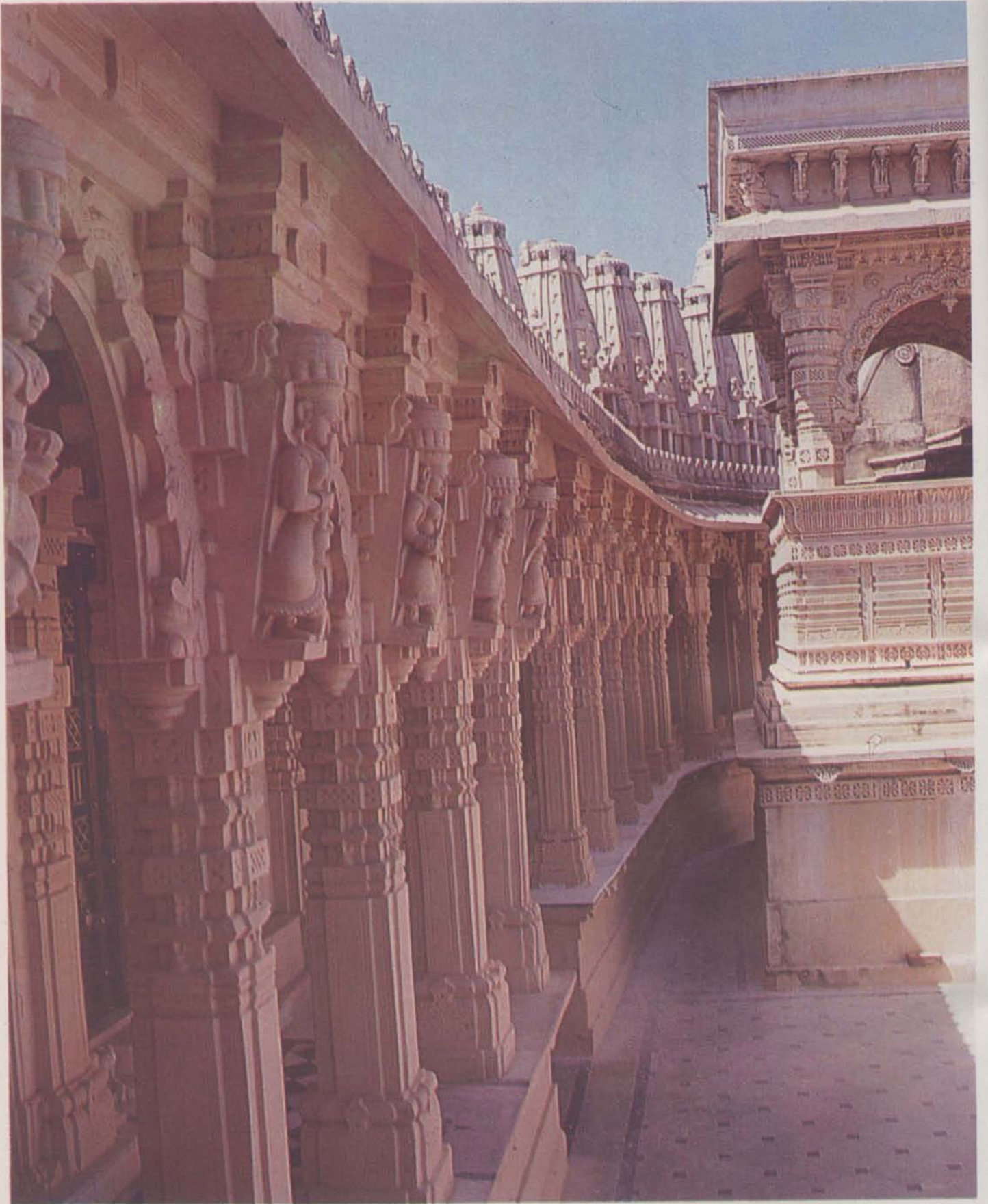
पालीताना को शाश्वत तीर्थ माना जाता है। यहाँ हजारों-हजार लाखों-लाख आत्माओं ने समाधि-मरण स्वीकार किया, महानिर्वाण की महाज्योति का यहां अलख जगाया। जैन-धर्म के चौबीस तीर्थकरों में से बाईस तीर्थकरों ने इस तीर्थ की स्पर्शना कर तीर्थ की महिमा को और अधिक बढ़ाया। भगवान् ऋषभदेव ने तो इस तीर्थ की ९९ वें 'पूर्व' वार यात्रा की। जैन धर्म के प्रथम तीर्थकर श्री ऋषभदेव द्वारा की गई यह महान् यात्रा जैन-धर्म के अनुयायियों के लिए स्वयं एक प्रेरणा है। आज भी प्रतिवर्ष हजारों श्रद्धालु इस तीर्थ की ९९ बार यात्रा करते हैं, जिसे 'नवाणु' यात्रा कहा जाता है। भगवान् आदिनाथ का इस महातीर्थ से विशेष सम्बन्ध होने के कारण उनकी आराधना हेतु किये जाने वाले वर्षीतप की तपस्या का पारणा भी लोग यहां आकर करते हैं, जिसे अक्षय-तृतीया या आखातीज कहते हैं। प्रतिवर्ष हजारों वर्षीतप के तपस्वी इस तीर्थ की यात्रा करके इस तप की यहां पूर्णाहूति करते हैं।

जैन-धर्म तप प्रधान है। वर्षीतप सबसे लम्बा और कठिन तप माना जाता है, लेकिन हजारों जैन प्रतिवर्ष इस तप की आराधना करते हैं। इस तप में एक दिन उपवास किया जाता है और अगले दिन भोजन लिया जाता है; यह क्रम पूरे एक वर्ष तक चलता है। वर्षीतप का पारणा हस्तिनापुर और पालीताना दोनों ही स्थानों पर करने का महत्त्व है।

पालीताना वास्तव में पादलिप्तपुर का अपभ्रंश हुआ वर्तमान नाम है। शत्रुओं द्वारा अविजित रहने के कारण इसे शत्रुंजय भी कहा जाता है। शास्त्रों में शत्रुंजय तीर्थ के कुल १०८ नामों का उल्लेख हुआ है, जिनमें पुंडरिक गिरी, विमलाचल, सिद्धाचल आदि नाम प्रचलित हैं।







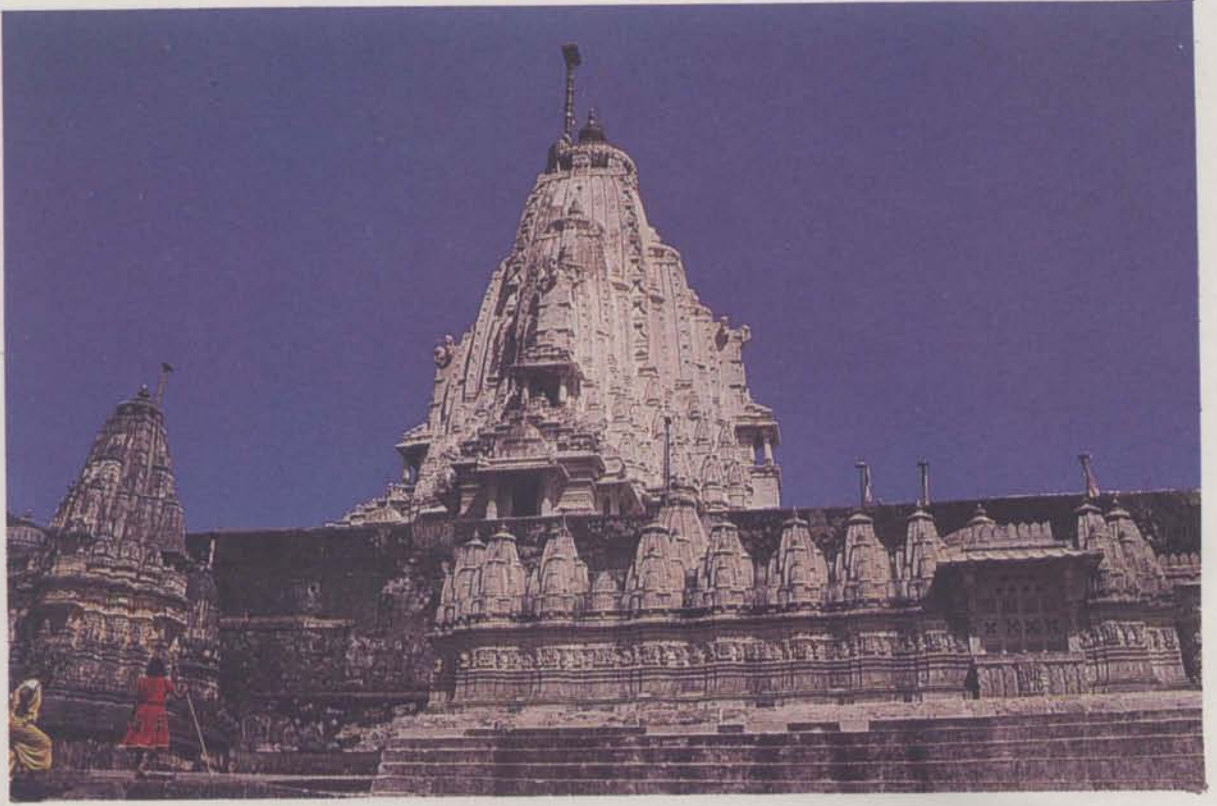
ऐसी भव्यता और कहाँ



स्तम्भायित महामन्दिर



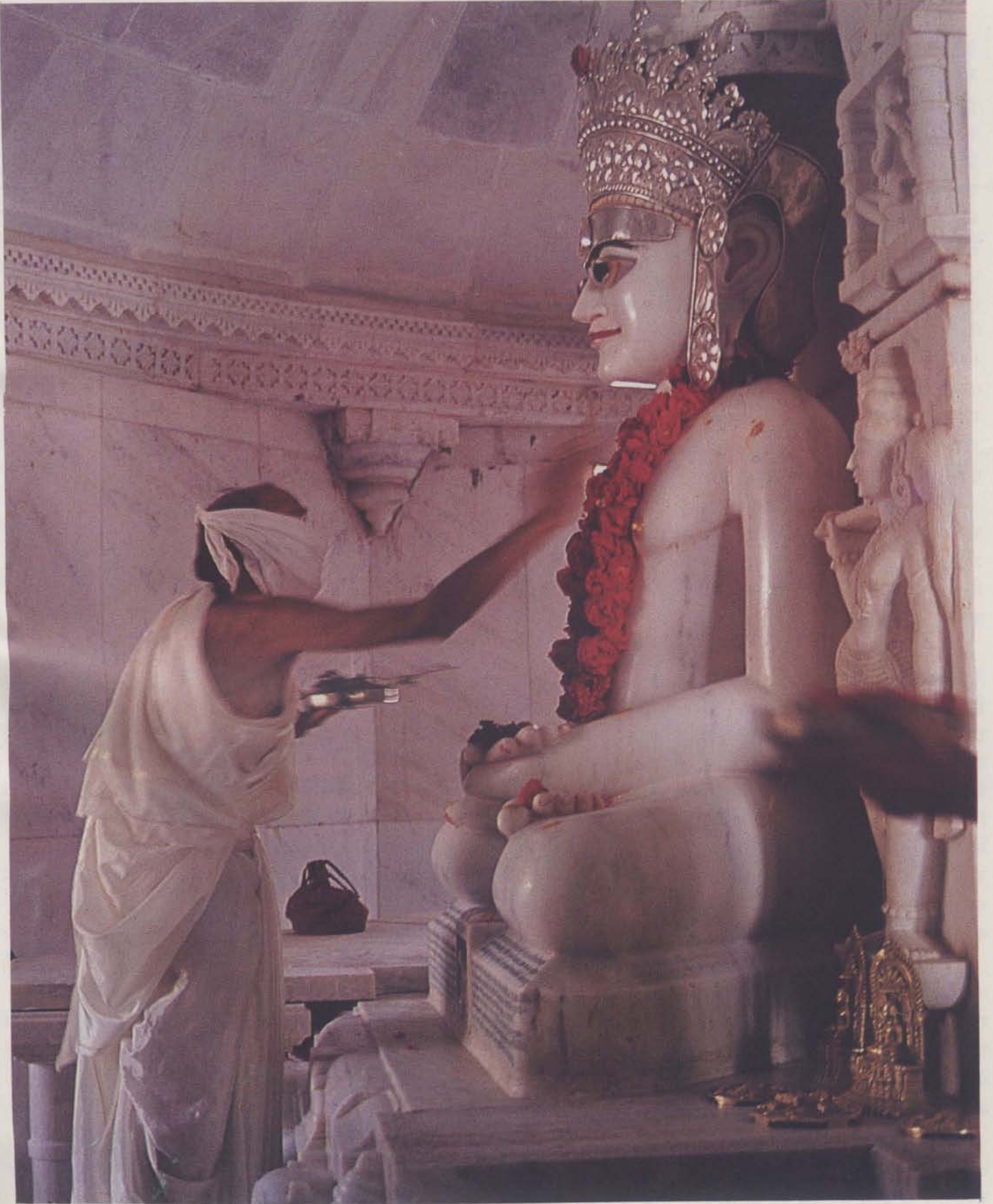
पालीताना : जहां हर ओर मंदिर और शिल्प है



शिखर - उपशिखर



नवटूकों में एक



हस्तगिरि स्थित भगवान् आदिनाथ

भगवान ऋषभदेव वर्तमान काल चक्र के तीसरे समय-कल्प में हुए, किन्तु इस पालीताना/ शत्रुंजय तीर्थ का अस्तित्व उनसे पहले भी माना जाता रहा है। स्वयं भगवान ऋषभदेव के पुत्र चक्रवर्ती भरत द्वारा इस महातीर्थ के जीर्णोद्धार का उल्लेख शास्त्रों में प्राप्त होता है। समय-समय पर और भी कई दफा उस तीर्थ पर नव निर्माण और जीर्णोद्धार का कार्य हुआ, जिनमें महाराजा सगर, भगवान श्री राम तथा पांडवों द्वारा करवाया गया जीर्णोद्धार विशेष उल्लेखनीय है। तीर्थ के बारे में सोलह उद्धार प्रसिद्ध हैं। तीर्थ पर आज जो मंदिर उपस्थित हैं, उनका निर्माण समय-समय पर अनेक श्रेष्ठि सामन्तों ने करवाया। पालीताना तीर्थ पर साल में चार बार विशेष मेले भी आयोजित होते हैं। कार्तिक पूर्णिमा, फाल्गुन शुक्ल त्रयोदशी, चैत्री पूर्णिमा और वैशाख शुक्ल तृतीया के दिन आयोजित होने वाले इन मेलों के अतिरिक्त वैशाख कृष्ण ६ के दिन भी मेला आयोजित होता है। वस्तुतः इस दिन मंत्री कर्माशाह द्वारा मुख्य टूंक में प्रतिष्ठित करवाये गये भगवान आदिनाथ की प्रतिष्ठा का दिवस है। फाल्गुन शुक्ला त्रयोदशी को तीर्थ की छः कोस की प्रदक्षिणा लगाई जाती है, जिसमें एक लाख से भी अधिक लोग शामिल होते हैं।

शत्रुंजय तीर्थ की जितनी महिमा है ऐसी ही शत्रुंजय नदी की भी महिमा बखानी जाती है। शत्रुंजय तीर्थ की पर्वतमालाओं के एक ओर प्रवाहमान यह नदी उतनी ही पावन मानी जाती है, जितनी वैदिक-धर्म में माँ भगीरथी गंगा। शत्रुंजय नदी में स्नान करके तीर्थ की यात्रा करना विशेष फलदायी माना जाता है।

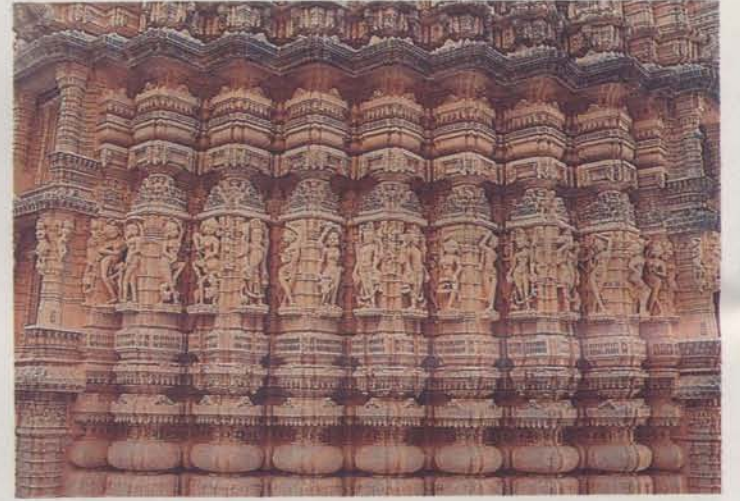
शत्रुंजय पहाड़ी पर स्थित यह मंदिरों का नगर पालीताना शहर के दक्षिण में है। यहां के मंदिर पर्वत की दो जुड़वा चोटियों पर निर्मित हैं, जो समुद्र की सतह से ६०० मीटर ऊँची है। ३२० मीटर लंबी इस प्रत्येक चोटी पर ये मंदिर पंक्तिबद्ध रूप से निर्मित हैं। यह पंक्ति दूर से दिखने में अंग्रेजी के 'एस' अक्षर के आकार की दिखाई देती है। विभिन्न आकार-प्रकार के इन बहुसंख्यक मंदिरों में विराजमान जिन प्रतिमाएं वीतराग-संदेश को प्रसारित कर रही हैं। शत्रुंजय पहाड़ी के ये मंदिर कला की दृष्टि से भले ही देलवाड़ा या राणकपुर के समकक्ष न जा सकें, पर यहां के असंख्य मंदिरों का समग्र प्रभाव, वातावरण में व्याप्त नीरवता कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जो दर्शकों के लिए आकर्षक बन जाती हैं।

पालीताना तीर्थ पर्वतमालाओं के बीच सुशोभित है। इस तीर्थ की यात्रा के लिए हमें करीब बत्तीस सौ सीढ़ियां चढ़नी पड़ती हैं। रास्ता अत्यन्त साफ-सुथरा है। प्रकृति की सुषमा देखते ही बनती है। तलहटी पर ही एक भव्य मंदिर निर्मित है, जिसका निर्माण सं. १९५० में श्रेष्ठि धनपतसिंह लक्ष्मीपतसिंह द्वारा करवाया गया। इस मंदिर में बावन देवरियां होने के कारण इसे बावन जिनालय भी कहा जाता है।

मार्ग में छोटी-मोटी अन्य भी कई देवरियां आती हैं, जिनमें चक्रवर्ती भरत, भगवान नेमिनाथ के गणधर वरदत्त, भगवान आदिनाथ, पार्श्वनाथ की चरण पादुकाएं एवं वारिखिल्ल, नारद, राम, भरत, शुक परिव्राजक, थावच्चा पुत्र, सेलकसूरि, जालि, मयालि तथा अन्य



समवसरण : नवीनतम प्रस्तुतिकरण



परिकर : हर कोण पर कला



प्रवेश द्वार और परिकर

देवी-देवताओं की प्रतिमाओं की देवरियां हैं। बीच मार्ग में कुमारपाल कुंड और साला-कुंड भी आते हैं। साला-कुंड के पास जिनेन्द्र-टूंक है, जिसमें अधिष्ठित गुरु मूर्तियाँ एवं देवमूर्तियों में मां पद्मावती देवी की प्रतिमा कला की दृष्टि से काफी सुन्दर है।

कुछ और आगे बढ़ें, तो वहां से रास्ता विभाजित होता है जिसमें एक नव टूंक की ओर जाता है तथा दूसरा भगवान आदिनाथ की मुख्य टूंक की ओर जाता है। मुख्य टूंक की ओर जाने पर सर्वप्रथम रामपोल और गाधण पोल दिखाई देती है। आगे हाथी पोल में प्रवेश करते समय सूरजकुंड, भीमकुंड एवं ईश्वरकुंड दिखाई देते हैं।

नव टूंक के मार्ग में पहली टूंक सेठ नरशी केशवजी की है। सं. १९२१ में श्री नरशी केशव जी ने इस टूंक का निर्माण करवाया था। इस मनोरम जिनालय में तीर्थकर शांतिनाथ की प्रतिमा प्रतिष्ठित है।

दूसरी खरतरवसही टूंक है। इसे चौमुख जी की टूंक भी कहते हैं। यह मंदिर इस पर्वत के उत्तरी शिखर पर निर्मित है। शत्रुंजय में निर्मित टूंकों में यह सर्वोच्च टूंक है। काफी दूर से ही इस मंदिर का उत्तुंग शिखर देखा जा सकता है। इस उत्तुंग जिनालय का नव निर्माण सं. १६७५ में सेठ सदासोम जी ने करवाया था। मंदिर में भगवान आदिनाथ की चौमुखजी के रूप में चार विशाल प्रतिमाएं विराजमान हैं। इसी टूंक में तीर्थकर ऋषभदेव की माता मरुदेवी का मंदिर भी निर्मित है। इसी मंदिर के पृष्ठ भाग में पांडव-मंदिर है, जिसमें पांच पांडव, माता कुन्ती एवं द्रौपदी की मूर्तियां हैं।

तीसरी टूंक का निर्माण छीपा भाइयों ने करवाया, अतः इसे छीपावसही टूंक कहते हैं। सं. १७९१ में निर्मित इस मंदिर में तीर्थकर ऋषभदेव मूलनायक के रूप में विराजमान हैं।

चौथी टूंक साकरवसही है। सेठ साकरचंद प्रेमचन्द्र द्वारा सं. १८९३ में निर्मापित इस टूंक में ऋषभानन, चंद्रानन, वारिषेण और वर्धमान इन चार शाश्वत जिनेश्वरों की प्रतिमाएं विराजित हैं।

छठी हीमवसही टूंक का निर्माण हीमा भाई द्वारा सं. १८८६ में हुआ है। यहां श्री अजितनाथ भगवान मूलनायक हैं।

सातवीं प्रेमवसही टूंक है। मोदी श्री प्रेमचन्द्र लवजी द्वारा सं. १८४३ में निर्मापित इस मंदिर के मूलनायक तीर्थकर श्री ऋषभदेव हैं।

आठवीं बालावसही टूंक है। मंदिर का नव निर्माण सं. ११९३ में बाला भाई द्वारा हुआ है। मंदिर के मूलनायक आदिनाथ भगवान हैं।

नवमीं मोतीशाह टूंक है। सेठ मोतीशाह ने इस विशालतम मंदिर का निर्माण करवाया था एवं उनके सुपुत्र खेमचंद ने सं. १८९३ में प्रतिष्ठा करवाई थी। मंदिर अपने आप में कई छोटे-मोटे मंदिरों का समूह है। मंदिर के मूलनायक श्री आदिनाथ भगवान हैं।

प्रेमवसही टूंक के पास एक विशेष मंदिर बना हुआ है। इसमें तीर्थकर आदिनाथ की १८ फुट की पद्मासनस्थ विशाल प्रतिमा है।



पालीताना : मंदिरों का महानगर

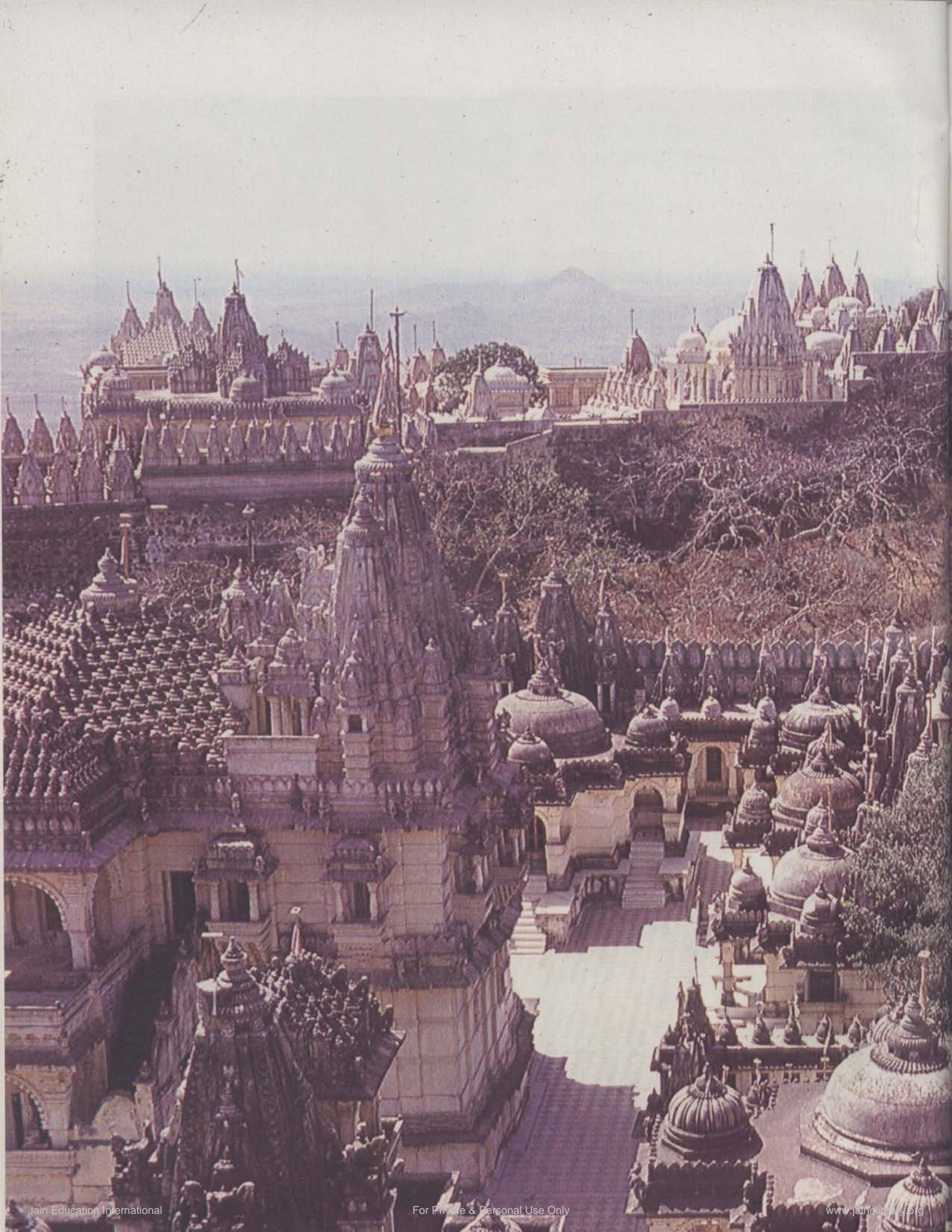


भक्ति में तन्मय गुजराती शिल्प



छज्जा

मंदिरों का महानगर शत्रुंजय→



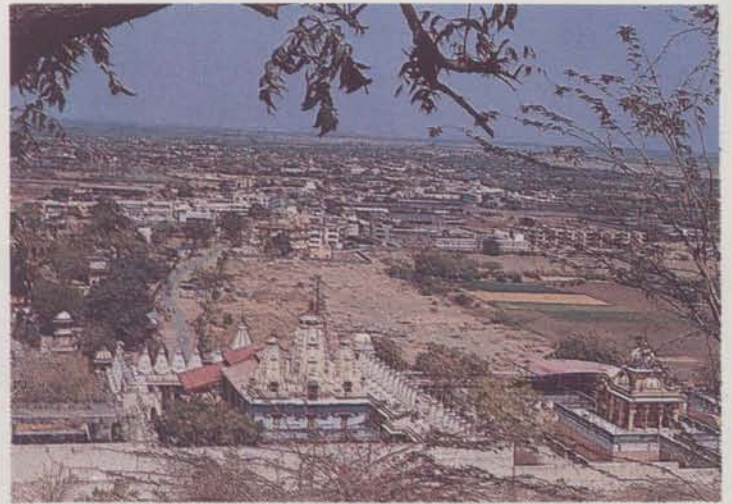


इस प्रतिमा को अद्भुत बाबा के नाम से भी पहचाना जाता है।

शत्रुंजय पर्वत की मुख्य टूंक में तीर्थंकर ऋषभदेव की प्रतिमा विराजमान है। श्वेतवर्णीय यह पावन प्रतिमा २.१६ मीटर की है। इस अतिशयवान प्रतिमा के दर्शन-पूजन के लिए लोग तरसते रहते हैं। प्रतिमा के दर्शनमात्र से श्रद्धा का सागर उमड़ पड़ता है। इस पर्वत और प्रतिमा की पावनता के लिए ही तो कहा गया, 'जिण शत्रुंजय तीर्थ नहीं भेट्यो, ते गर्भवासकहंत रे।'।

मूल मंदिर के पृष्ठ भाग में रायण वृक्ष है। वृक्ष काफी प्राचीन है। कहा जाता है यहां इसी वृक्ष की छाया में तीर्थंकर आदिनाथ ने सुदीर्घ तपस्या-साधना की थी। यहां तीर्थंकर आदिनाथ के ४७x२५ इंच की विशाल चरण पादुकाएं प्रतिष्ठित हैं।

पालीताना में पर्वत के अतिरिक्त तलहटी में समवसरण मंदिर, आगम मंदिर, जम्बू द्वीप, विशाल म्यूजियम आदि भी दर्शनीय हैं। इस महातीर्थ की यात्रा सचमुच जीवन का सौभाग्य है।



पालीताना गांव एवं तलहटी : विराट दर्शन



डांडिया रास



शत्रुंजय के सोपान



शत्रुंजय-नदी



● राजगृही

राजगृह का पौराणिक दृष्टि से अपना महत्व है। यह भगवान महावीर तथा भगवान बुद्ध की कर्म-स्थली रही है। भगवान महावीर ने राजगृह में बारह चातुर्मास सम्पन्न करके इस जनपद को अपने आध्यात्मिक अमृत से अभिसिंचित किया है। भगवान महावीर के व्रतनिष्ठ लगभग सात लाख श्रावक-श्राविकाओं में से चौथाई लोग तो राजगृह जनपद के ही रहे हैं। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि भगवान महावीर का राजगृह जनपद पर अपरिसीम प्रभाव रहा।

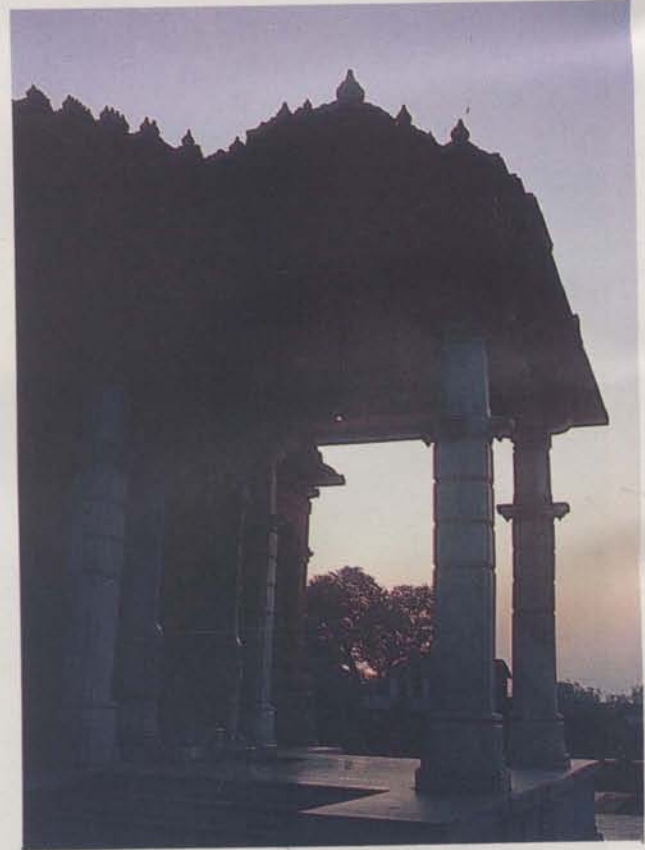
भगवान बुद्ध का राजगृह से विशेष सम्बन्ध रहा। वस्तुतः राजगृह के नागरिक धर्म और अध्यात्म का पूरा सम्मान करते रहे। उन्होंने भगवान महावीर और भगवान बुद्ध में भगवत्ता और सम्बोधि की जो सुवास-देखी उसी से उन दोनों महापुरुषों का यहां पूरा वर्चस्व रहा। उसी का यह नतीजा है कि राजगृह के इर्द-गिर्द स्थित पर्वतमालाओं एवं कन्दराओं में जैन-मुनि तथा बौद्ध-भिक्षु दोनों ही आत्म साधनारत रहते थे। भगवान बुद्ध के निर्वाण के बाद बौद्ध भिक्षुओं का जो प्रथम सम्मेलन आयोजित हुआ था, वह राजगृह में ही हुआ था। आज हम जिसे 'सप्तपर्णी' गुफा कहते हैं वही वास्तव में बौद्ध भिक्षुओं के प्रथम सम्मेलन/संगीति का स्थान है। राजा श्रेणिक, राजा अजातशत्रु (कुणिक) आदि जिन नरेशों का जैन तथा बौद्ध शास्त्रों में बड़े ही आदर के साथ उल्लेख किया गया है, वे वास्तव में इसी जनपद के नरेश रहे। राजा श्रेणिक को भगवान महावीर के प्रमुख श्रावकों में एक माना जाता रहा है। श्रेणिक ने भगवान से उनके कैवल्य से निष्पन्न ज्ञानानुभूति को रसास्वादित किया और एक सम्राट होते हुए भी अनासक्त और समतापूर्ण जीवन का निर्वाह किया। यह अलग बात है कि श्रेणिक की अपमृत्यु हुई, किन्तु उसने जीवन में इतना पुण्योपाजन और सम्यक्त्व-प्राप्ति के निमित्त उपलब्ध कर लिये थे कि जैन-धर्म की मान्यता के अनुसार भविष्य में होने वाले चौबीस तीर्थंकरों में अपना स्थान बना लिया। हम जिन्हें पद्मप्रभ स्वामी कहते हैं वे वास्तव में राजा श्रेणिक के ही जीव हैं।

मेतार्य, धन्ना, शालिभद्र, मेघकुमार, अभयकुमार, जम्बूस्वामी, पूर्णिया आदि आदर्श पुरुषों की जन्मस्थली यही राजगृह नगरी रही।

राजगृह साधना के अतिरिक्त व्यापार, समृद्धि और पर्यटन की दृष्टि से भी अपना महत्व रखती आयी है। आज राजगृह में नगरी के नाम पर केवल ध्वंसावशेष ही बचे हुए हैं लेकिन जैन, बौद्ध और हिन्दु-धर्म का समान रूप से आराधना-स्थल होने के कारण यहां सदा यात्रियों का तांता लगा रहता है। पर्वतों पर स्थित जैन-तीर्थ-भूमि के



मूलनायक मुनिसुव्रत स्वामी



मंदिर के चौखट पर उषा की दस्तक



समवसरण मंदिर

अलावा यहां पर बौद्ध स्तूप तथा गर्म पानी का ब्रह्मकुंड भी विख्यात है। यहां शिक्षा, सेवा और कला के लिए वीरायतन भी निर्मित है।

यह तीर्थ कुल पांच पर्वतों पर निर्मित है। सर्वप्रथम तलहटी पर बनी जैन धर्मशाला से कुछ ही दूरी पर विपुलगिरी पर्वत है। लगभग २ कि.मी. की चढ़ाई चढ़ने पर विपुलगिरी की टूंक है। पर्वत पर श्वेताम्बर-दिगम्बर दोनों परम्पराओं के मंदिर हैं।

विपुलाचल पर्वत से लगभग २ कि. मी. उतरने और २ कि. मी. पुनः चढ़ने पर द्वितीय रत्नगिरी पर्वत आता है। इस रत्नगिरी पर्वत पर भी श्वेताम्बर व दिगम्बर मंदिर निर्मित हैं।

रत्नगिरी पर्वत के सामने गृध्रकूट पर्वत पर भगवान बुद्ध का विशाल मंदिर है। रत्नगिरी पर्वत से करीब ४ कि. मी. पर उदयगिरी पर्वत है। पर्वत की चढ़ाई काफी क्लिष्ट है।

चौथा पर्वत स्वर्णगिरी है। इसे श्रमणगिरी भी कहा जाता है। यह पर्वत धर्मशाला से पांच कि. मी. दूर है। चढ़ाई लगभग ३ कि. मी. है। इस पर्वत के दक्षिण भाग में दो गुफाएं हैं। गुफाओं में दीवारों पर जिन प्रतिमाएं उत्कीर्ण हैं। यहां से २ कि. मी. पर वैभारगिरी पर्वत है। पर्वत पर जिन मंदिर के अतिरिक्त शालिभद्र का मंदिर है। इस मंदिर की बायीं और एक प्राचीन भग्न मंदिर है। इसमें अनेक प्राचीन तथा कलात्मक प्रतिमाएं हैं।

पर्वत यात्रा के अतिरिक्त यहाँ अन्य कई प्राचीन-अर्वाचीन भव्य जिनालय हैं। तीर्थ की यात्रा अन्तर्यात्रा में सहायक हो सकती है। ●



विपुलाचल पर्वत



राजगृह पर्वत पर स्थित मंदिर



वीरायतन में निर्मित महावीर की मनोरम झांकी



पर्वत पर आसीन भगवान महावीर की दिव्य प्रतिमाएं



● पावापुरी

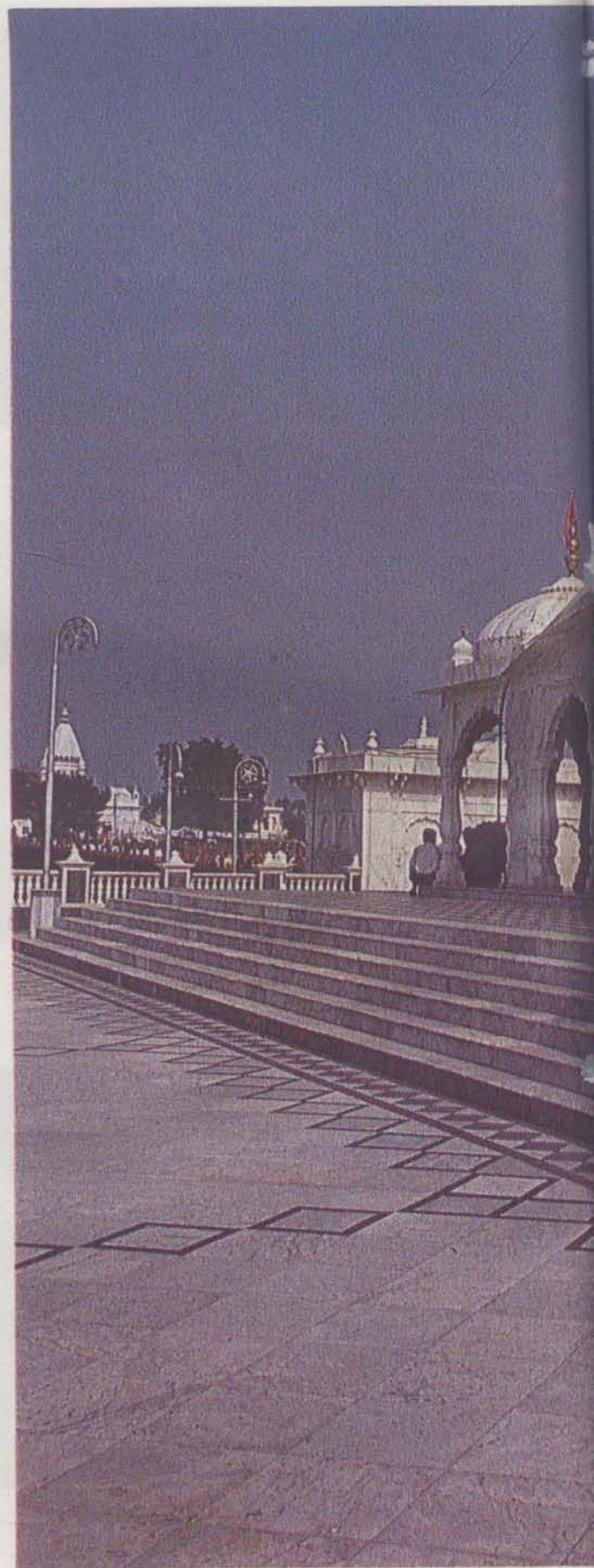
पावापुरी जैन-धर्म के कल्याणक स्थलों में सर्वाधिक प्रिय है। यह वह महान् पावन भूमि है, जहां जैन धर्म के चरम तीर्थंकर भगवान श्री महावीर स्वामी का महानिर्वाण हुआ था। पावापुरी की माटी को ही यह महान सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जहां भगवान ने अपनी प्रथम देशना दी। महामुनि इन्द्रभूति गौतम जैसे महापुरुषों को तत्त्वबोध प्रदान किया। यह भी एक महान संयोग की ही बात है कि भगवान ने अपने देहोत्सर्ग के लिए भी पावापुरी की पावन भूमि का ही चयन किया। भगवान ने अपने निर्वाण से पूर्व सोलह प्रहर तक अनवरत देशना दी। सचमुच, बिहार भारत का वह सौभाग्यशाली राज्य है, जहाँ भगवान महावीर और बुद्ध जैसे अमृत-पुरुषों का अवतरण, कैवल्य और महापरिनिर्वाण हुआ।

पावापुरी और राजगृह दोनों करीब ही हैं। ये दोनों ही स्थल भारतवर्ष के पावनधाम हैं। यहाँ की यात्रा भगवान महावीर और बुद्ध के चरण स्पर्शित कल्याणक-भूमि की यात्रा है।

जैन धर्म की यह मान्यता रही है कि दीपावली पर्व का शुभारम्भ भगवान महावीर के निर्वाण के बाद यहीं से हुआ था। दीपावली के प्रवर्तन के रूप में पहले दीप को प्रज्वलित करने का सौभाग्य इसी पावापुरी की पावन माटी को प्राप्त हुआ।

भगवान महावीर के महानिर्वाण के बाद जिस स्थल पर उत्सर्ग देह का अंत्येष्टि-संस्कार हुआ, वहाँ की माटी को शीघ्र पर धारण कर लोग अपने घरों में लेकर गये तथा अपने पूजा-स्थलों में अधिष्ठित किया। बूंद-बूंद कर कलश भरता है, वहीं बूंद-बूंद कर कलश रिसता है। भले ही लोग दो-दो चार-चार च्यूटी ही माटी लेकर गये होंगे, पर अगर हजारों-हजार लोग यह भूमिका अदा करें तो उस स्थान का गढ़ा हो जाना आश्चर्यजनक नहीं है। भगवान महावीर के अग्रज भाई नरेश नंदीवर्द्धन ने उस स्थान पर एक जलाशय और मध्य में मंदिर का निर्माण करवाया, जो कि जल-मंदिर के रूप में विख्यात हुआ। मंदिर भले ही बहुत बड़ा न हो लेकिन कमल के फूलों से घिरे जलाशय के बीच निर्मित यह मंदिर बेहद सुरम्य और नयनाभिराम लगता है। प्रतिवर्ष हजारों-लाखों लोग इस जल-मंदिर में आकर भगवान श्री महावीर को अपनी श्रद्धाभरी पुष्पांजलि अर्पित करते हैं।

जल, मंदिर में गर्भगृह के अन्दर भगवान श्री महावीर की प्राचीन चरण-पादुकाएं प्रतिष्ठित हैं। इन चरणों के पास दस मिनट के लिए बैठना भी भव-भव के पाप को नष्ट करने के लिए पर्याप्त है। यह स्थल भगवान महावीर की आभामंडल से इतना ऊर्जस्वित है कि यहाँ आना





भी एक साधक के लिए किसी जाग्रत चैतन्य-पुरुष का सान्निध्य पाने के समान है।

जल-मंदिर के पास भगवान महावीर का एक और बड़ा मंदिर है, जहां दिगम्बर आम्नाय के अनुसार परमात्मा की पूजा होती है। कुछ और आगे बढ़ें, तो एक भव्य समवसरण मंदिर का दर्शन होता है। मान्यता रही है कि यह वह पवित्र स्थल है जहां भगवान ने अपनी अन्तिम देशना दी थी। पावापुरी गाँव के मध्य एक और विशाल मंदिर है। यह वह स्थल माना जाता है जहां भगवान ने अपने महानिर्वाण के लिए देहोत्सर्ग किया। इतिहास में प्रसिद्ध राजा हस्तिपाल की रज्जुकशाला यही वह स्थान है। राजा हस्तिपाल मगध नरेश अजातशत्रु के मांडलिक राजा रहे थे। इस मंदिर के पास ही यात्रियों के आराम करने के लिए विशाल धर्मशाला निर्मित है। सचमुच, पावापुरी की पावन भूमि जन-जन को शान्ति, साधना, त्याग और मुक्ति का संदेश देती है।



तीर्थ पर बिखरता आभासमंडल



समवसरण मंदिर में मूलनायक महावीर



जल-मंदिर में भगवान महावीर प्रभु के चरण



दर्शन के लिए कतारबद्ध खड़े भक्तगण

सम्मेत शिखर और शत्रुंजय भारतवर्ष के सम्पूर्ण जैन तीर्थों में प्रमुख है। पश्चिमी भारत के शिखर पर शत्रुंजय तीर्थ है और पूर्वी भारत में सम्मेत शिखर। किसी एक तीर्थकर के, किसी एक कल्याणक से जब कोई भूमि तीर्थ बन जाया करती है, तब उस तीर्थ की पावनता और शक्ति का आकलन करना तो मानव बुद्धि के लिए असम्भव होगा, जहां बीस-बीस तीर्थकरों ने निर्वाण की अखण्ड ज्योति जलाई हो। यद्यपि निर्वाण की पहली ज्योति अष्टापद (हिमालय) में जली थी, लेकिन आज हमारे लिए वह तीर्थ अदृश्य है। ऐसी स्थिति में सम्मेत शिखर वह तीर्थ है, जिसे हम निर्वाण की आदि ज्योति का शिखर कह सकते हैं। सच तो यह है कि निर्वाण की सर्वोच्च ज्योति ही सम्मेत शिखर है।

जैन-धर्म के चौबीस तीर्थकरों में अजितनाथ, सम्भवनाथ, अभिनन्दनप्रभु, सुमतिनाथ, पद्मप्रभु, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभु, सुविधिनाथ, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत स्वामी, नमिनाथ एवं पार्श्वनाथ—इन बीस तीर्थकरों ने इसी महान पर्वत पर जीवन की सांध्यवेला पूर्ण की एवं परमपद मोक्ष प्राप्त किया। हर तीर्थकर ने अपनी आभा से इस स्थान की घनत्व शक्ति को सचेतन करने के प्रयत्न किये और परिणामतः लाखों वर्षों से यह स्थान स्पन्दित, जाग्रत और अभिसिंचित होता रहा है। सचमुच, सम्मेत शिखर अद्भुत, अनूठा, जाग्रत पुण्य-क्षेत्र है।

सम्मेत शिखर का वायुमंडल आज भी एक पवित्रता लिये है। इस पर्वत की यह अपनी विशेषता है कि यह अपने पर स्थित विशाल चंदन वन के सुगंधित वृक्षों से सदा महकता रहता है। कई दुर्लभ वनौषधियां इस पर्वत पर होती हैं। पर्वत पर बहते शीतल झरनों का कल-कल निनाद हमारे हृदय को आनंदित करता है।

सम्मेत शिखर का सर्वाधिक प्राचीन उल्लेख ज्ञाताधर्म कथा नामक आगम के मल्लिजिन अध्ययन में हुआ है। वहां तीर्थकर मल्लिनाथ के निर्वाण का वर्णन करते हुए इस पर्वत के लिए दो शब्दों का प्रयोग किया गया है— 'सम्मेय पव्वे' और 'समेय सेल सिहरे'।

कल्पसूत्र के पार्श्वनाथ चरित्र में तीर्थकर पार्श्व के निर्वाण का वर्णन करते हुए सम्मेत शिखर के लिए 'सम्मेय सेल सिहरंमि' शब्द अभिहित है।

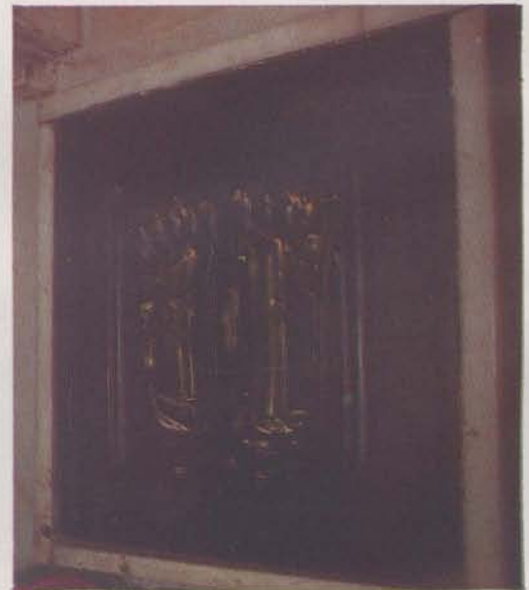
मध्यकालीन साहित्य में सम्मेत शिखर के लिए समिदिगिरी या समाधिगिरि नाम भी प्राप्त होता है। स्थानीय जनता इस पर्वत को



तलहट्टी पर स्थित कोठी मंदिर



अनुत्तरयोगी भगवान पार्श्वनाथ : कोठी मंदिर के मूलनायक



पार्श्वनाथ टूंक में प्रभु के पावन चरण

पारसनाथ हिल नाम से सम्बोधित करती है। यह भी उल्लेखनीय है कि इस तीर्थ को श्वेताम्बर परम्परा में सम्मेत शिखर कहा जाता है और दिगम्बर परम्परा में सम्मेद शिखर। इसका मुख्य कारण परम्परा भेद नहीं, अपितु प्राचीन भाषा के भेद का है। श्वेताम्बर परम्परा में अर्धमागधी प्राकृत प्रचलित है और दिगम्बर परम्परा में सौरसेनी। जैसा कि भाषाविद जानते हैं कि सौरसेनी प्राकृत में 'त' का 'द' प्रयोग हो जाता है इसलिए दिगम्बर परम्परा में सम्मेत को सम्मेद कहा जाता है।

शिखरजी के भोमियाजी महाराज जगविख्यात हैं। जैन धर्म में अधिष्ठायक देव के रूप में दो शक्तियां जग प्रसिद्ध हैं- राजस्थान में नाकोड़ा भैरव एवं बिहार में शिखरजी के भोमियाजी। सम्मेत शिखर के विशाल पहाड़ पर रात के बारह बजे हों या दिन के, श्रद्धालु यात्रा करते पाये जाते हैं आखिर इन सबकी रक्षा भोमियाजी महाराज ही तो करते हैं।

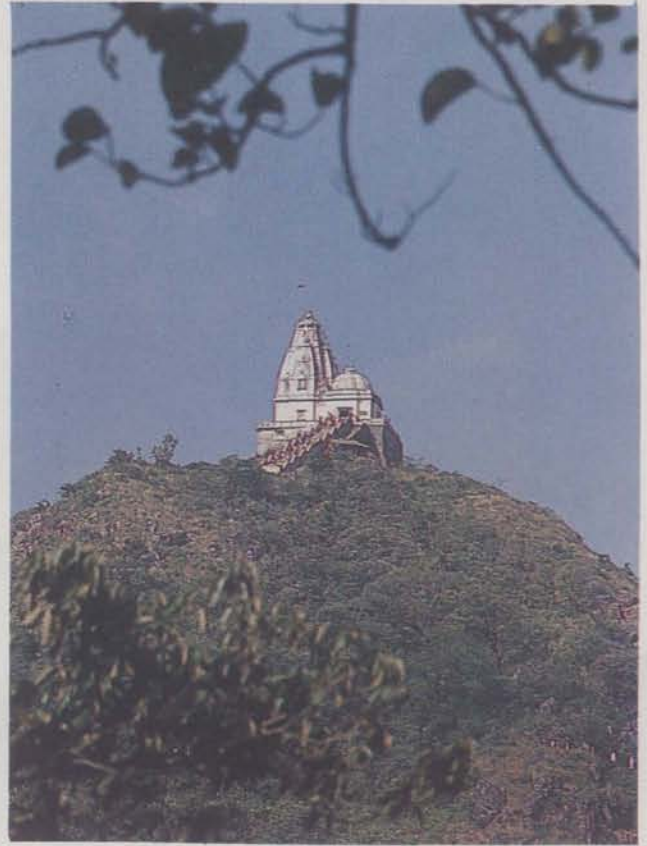
भोमियाजी महाराज तीर्थ-रक्षा तो करते ही हैं, साथ ही भक्तों की मनोकामनाएं भी पूर्ण करते हैं। तलहटी जिसे मधुवन कहा जाता है वहाँ बाबा भोमिया का मनोहारी मंदिर एवं ओजस्वी प्रतिमा है। लोग तेल और सिन्दूर से बाबा की पूजा करते हैं और अपनी श्रद्धा बाबा के द्वार पर लुटाते हैं। प्रतिवर्ष होली के दिन बाबा के द्वार पर शिखरजी में एक भव्य मेला लगता है।

नवीं सदी में आचार्य यशोदेव सूरि के प्रशिष्य श्री प्रद्युम्नसूरि ने लम्बे असें तक मगध देश में विहार किया था। इसी क्रम में वे सात बार सम्मेत शिखर तीर्थ भी पधारे थे। नवीं शताब्दी के प्रारम्भ में सम्मेत शिखर धर्मान्धता का शिकार हुआ और वहाँ के सारे मंदिर ध्वस्त कर दिये गये। इसी सदी के अन्त में तीर्थ का जीर्णोद्धार हुआ।

सम्राट अकबर ने सन् १५९२ में आचार्य श्री हीरविजय सूरि के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर यह पर्वत उन्हें भेंट दे दिया था। आगरा के श्री कुमारपाल सोनपाल लोढ़ा ने सन् १६७० में यहाँ जिनालयों का जीर्णोद्धार करवाया था।

सन् १७५२ में दिल्ली के अठारहवें बादशाह अबु अलीखान बहादुर ने मुर्शिदाबाद के सेठ महताबराय को जगत सेठ की उपाधि से विभूषित किया तथा मधुवन कोठी, जयपार नाला, जलहरी कुंड, पारसनाथ तलहटी पहाड़ उपहार में दिया।

सं. १८०९ में मुर्शिदाबाद के सेठ महताब राय जी को दिल्ली के सम्राट बादशाह अहमद शाह ने उनके कार्यों से प्रभावित होकर मधुवन कोठी, जय पारनाला, जलहरी कुंड एवं पारसनाथ पहाड़ की तलहटी की ३०१ बीघा भूमि उपहार में दी। सं. १८१२ में बादशाह अबूअलीखान बहादुर ने इस पहाड़ को कर-मुक्त घोषित किया था। सेठ महताब राय की यह प्रबल इच्छा थी कि इस पुण्य तीर्थ का जीर्णोद्धार हो। संयोगवशात् जीर्णोद्धार का कार्य प्रारम्भ होने से पूर्व ही सेठ श्री महताब राय जी का देहान्त हो गया। उनके पुत्र सेठ खुशालचन्द के नेतृत्व में सम्मेत शिखर तीर्थ का जीर्णोद्धार कार्य प्रारम्भ हुआ एवं दैविक संकेत से बीस टूकों के स्थान का चयन कर

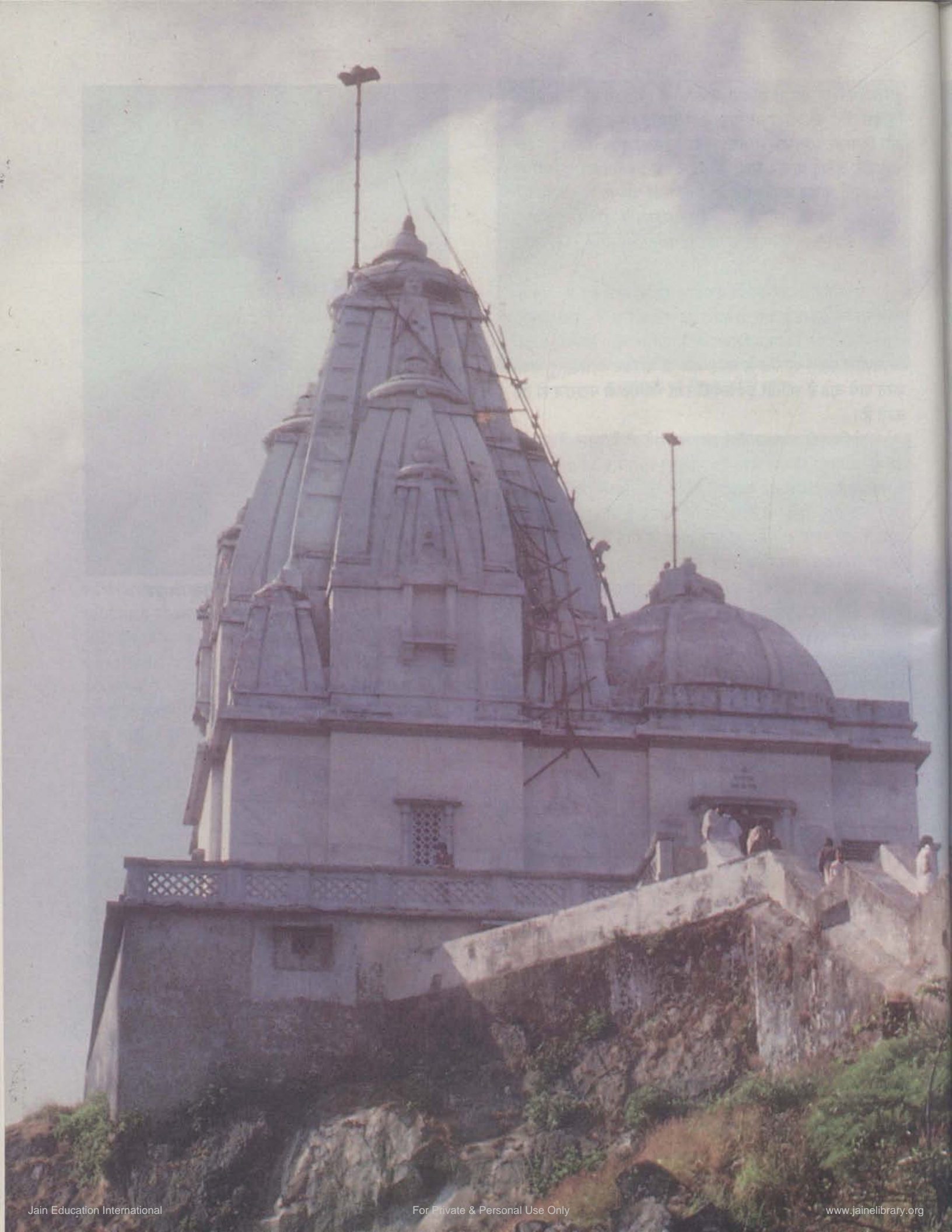


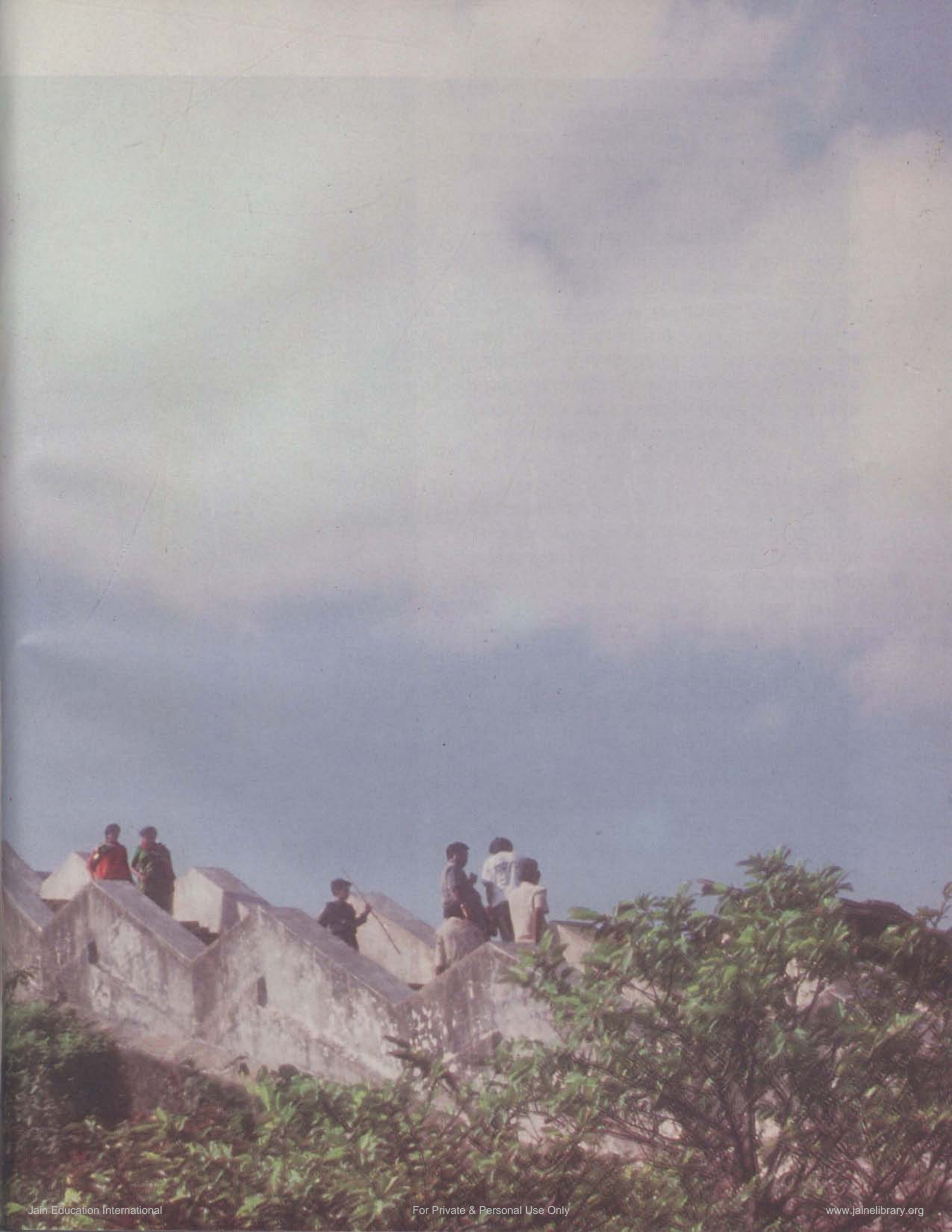
पार्श्वनाथ टूंक : तीर्थ का सर्वोच्च शिखर



तीर्थ यात्रा कर रहे यात्रीगण

पार्श्वनाथ टूंक →





वहाँ टूकों का निर्माण करवाया गया। इनकी प्रतिष्ठा सं. १८२५ माघ शुक्ला तृतीया को आचार्य श्रीधर्मसूरि के करकमलों से हुई। इसी जीर्णोद्धार कार्य के अन्तर्गत ही पहाड़ पर जल-मंदिर, मधुवन में सात मंदिर, धर्मशाला व पहाड़ के क्षेत्रपाल श्री भोमियाजी के मंदिर का भी निर्माण हुआ एवं प्रतिष्ठा हुई।

सं. १९२५ से १९३३ तक इस तीर्थ का पुनः जीर्णोद्धार का कार्य हुआ। इस जीर्णोद्धार के अन्तर्गत ही भगवान आदिनाथ, भगवान वासुपूज्य, नेमिनाथ, महावीर तथा शाश्वत जिनेश्वर श्री ऋषभानन, चंद्रानन, वारिषेण, वर्धमान आदि की नई देहरियों का भी निर्माण हुआ।

कालचक्र के प्रवाह में पर्वत पर एक संकट और आया। पालगंज राजा ने पहाड़ विक्रय की सार्वजनिक घोषणा की। सूचना पाकर कलकत्ता के रायबहादुर श्री बद्रीदास जौहरी एवं मुर्शिदाबाद के श्री बहादुरसिंह दूगड़ ने भारतीय स्तर की श्वेताम्बर संस्था आनन्द जी कल्याण जी की पेढी को यह पहाड़ क्रय करने का संकेत दिया। दोनों पुण्य पुरुषों के सक्रिय सहयोग से पेढी ने यह पहाड़ ९.३.१९१८ को २४२२०० रुपये में क्रय कर लिया और सुचारू रूप से तीर्थ का विकास प्रारम्भ हुआ।

साध्वी श्री सुरप्रभा श्री के अथक प्रयासों से सं. २०१२ में इस तीर्थ का पुनः जीर्णोद्धार प्रारम्भ हुआ, जो सं. २०१७ में पूर्ण हुआ। यह इस तीर्थ का तेइसवां उद्धार था। आज हम तीर्थ पर जो कुछ देख रहे हैं वह इसी जीर्णोद्धार कार्य का अन्तिम रूप है।

इस पावन तीर्थ की यात्रा संकटहारी, पुण्यकारी और पापनाशिनी है। भोमिया बाबा के मंदिर में धोक लगाकर यात्रा प्रारम्भ की जाती है। लगभग ३ कि. मी. की चढ़ाई चढ़ने पर गंधर्वनाला आता है। यहां यात्रीगण कुछ समय के लिए विश्राम करते हैं। यहीं 'भाताघर' भी है जहां वापसी में लोग नाश्ता करते हैं। यहाँ से करीब २ कि. मी. एवं ५०० सीढ़ियां चढ़ने पर समतल भूमि आती है। यहां चारों ओर तीर्थकरों की टूकें बनी हुई हैं।

पहली टूक गणधर गौतम स्वामी की है। इसमें चौबीस तीर्थकर और दस गणधर की चरण पादुकाएं विराजित हैं। इनमें श्यामवर्णीय चरण गौतम स्वामी के हैं। इनकी प्रतिष्ठा सं. १८२५ में हुई थी। यहां से कुछ कदम दूरी पर ही श्री कुंथुनाथ की टूक है। जिसकी प्रतिष्ठा सं. १८२५ में हुई थी।

कुंथुनाथ भगवान की टूक के पास ही श्री ऋषभानन शाश्वत जिन की टूक है। पास में ही चन्द्रानन शाश्वत जिन की टूक है। इसी के निकट पांचवी टूक तीर्थकर श्री नमिनाथ की है।

छठी टूक तीर्थकर अरनाथ की है। प्रभु ने यहां मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी को निर्वाण प्राप्त किया था। यहाँ विराजित चरण पादुकाएं सं. १८२५ माघ शुक्ला ३ को प्रतिष्ठित हुई हैं।

तीर्थकर अरनाथ की टूक के पश्चात् तीर्थकर श्री मल्लीनाथ की टूक है। यहाँ चरण-स्थापना सं. १८२५ में हुई थी। इसके आगे आठवी टूक तीर्थकर श्री श्रेयांसनाथ की है। यहाँ पर भी चरण-स्थापना सं. १८२५ में ही हुई थी।





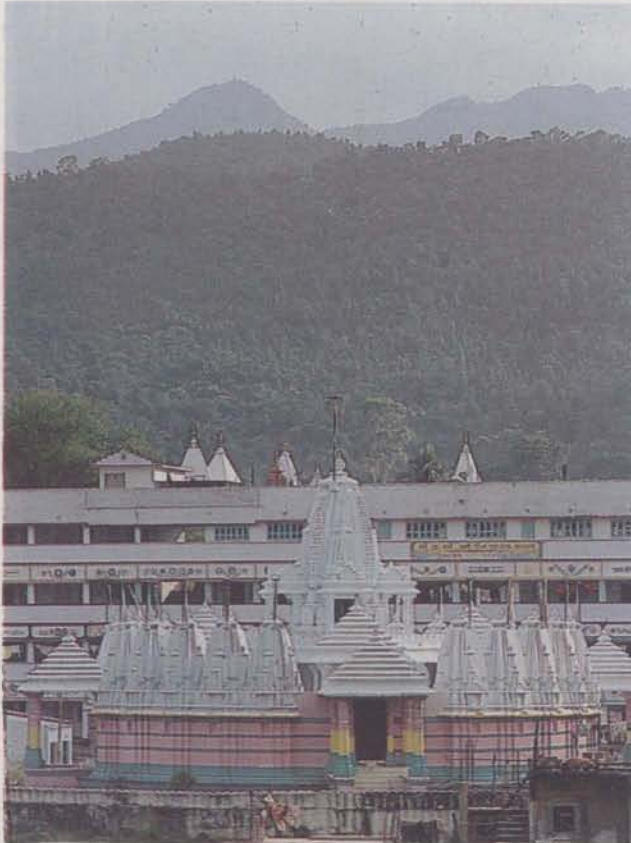
सम्पेत शिखर के अधिष्ठायक श्री भोमिया जी महाराज

तनिक-सा और आगे बढ़ने पर नवमी टूंक है। यहाँ नवमें तीर्थकर श्री सुविधिनाथ ने निर्वाण प्राप्त किया था। दसवीं टूंक तीर्थकर श्री पद्मप्रभु की है। कुछ ही दूरी पर तीर्थकर श्री मुनिसुव्रत स्वामी की ग्यारहवीं टूंक है। यहाँ ऊँचे शिखर पर एक प्यारी-सी टूंक दिखाई देती है। यह टूंक है तीर्थकर श्री चन्द्रप्रभु की। सचमुच यहाँ पहुँचकर हृदय इतना प्रफुल्लित हो जाता है कि बस... यहाँ प्रभु के श्यामवर्णीय चरण हैं। चरण-स्थापना सं. १८२५ में हुई थी। यहाँ एक विशाल गुफा भी है। जो पहाड़ की अन्य गुफाओं से अधिक गम्भीर और अनुकूल है।

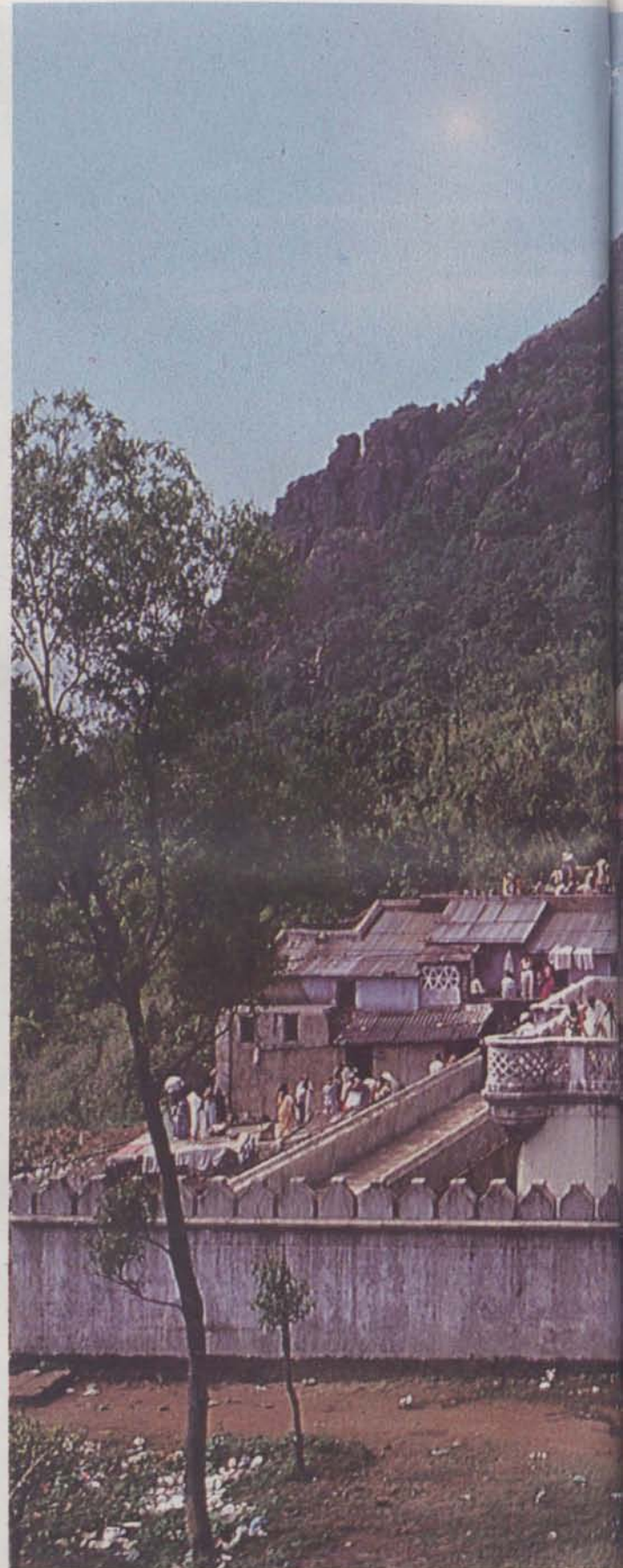
यहाँ से जल मंदिर २ कि. मी. है। मार्ग में भगवान श्री आदिनाथ की टूंक के दर्शन होते हैं। यहाँ से कुछ ही दूरी पर चौदहवीं टूंक है। इस टूंक में चौदहवें तीर्थकर श्री अनन्तनाथ के चरण प्रतिष्ठित हैं। पन्द्रहवीं टूंक तीर्थकर श्री शीतलनाथ की है। सोलहवीं टूंक श्री संभवनाथ की है।

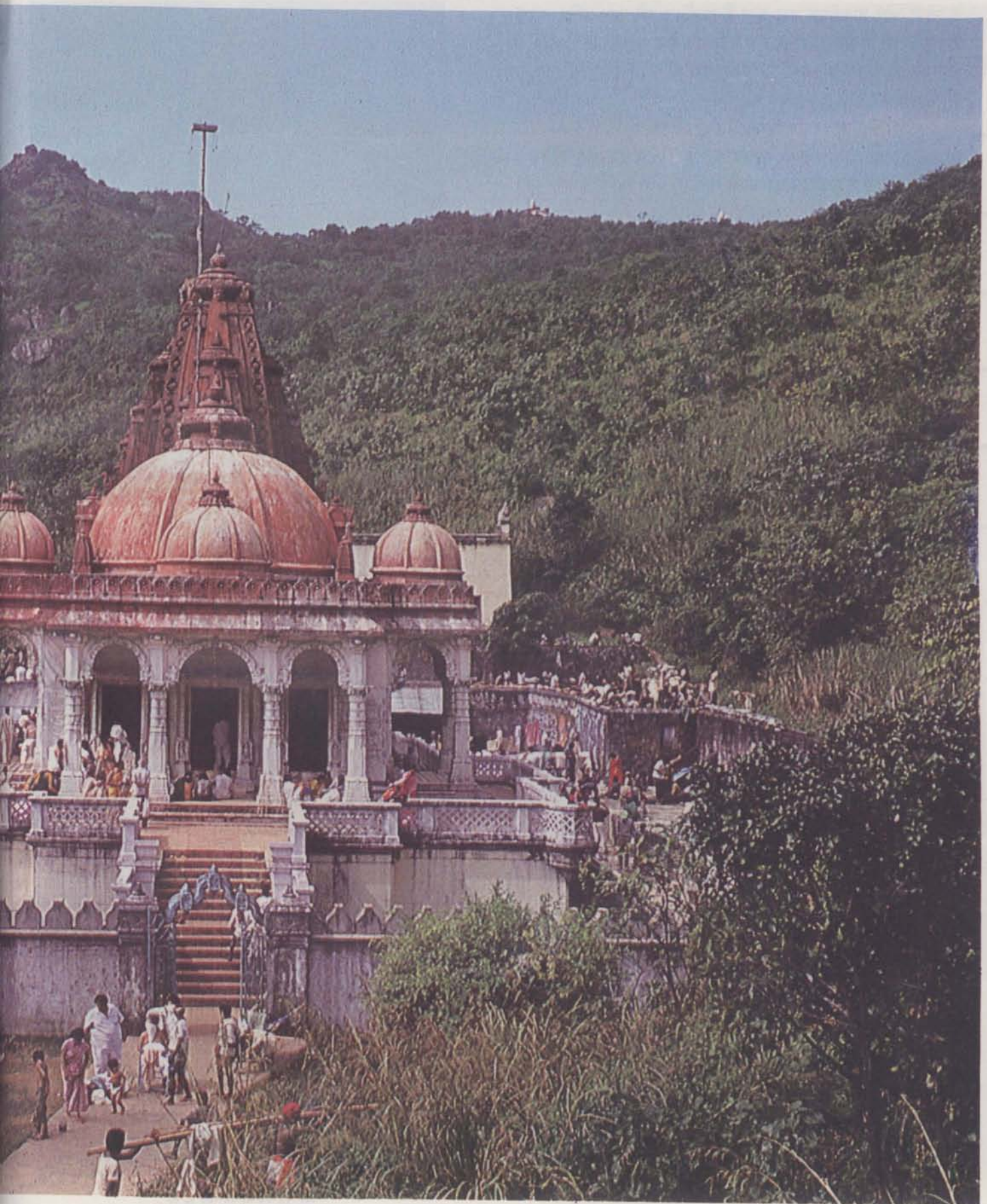
सतरहवीं टूंक भगवान श्री वासुपूज्य की है। चरण सं. १८२५ में विराजमान हुए थे। अठारहवीं टूंक तीर्थकर श्री अभिनन्दन स्वामी की है। यहाँ भी चरण-स्थापना सं. १८२५ में हुई थी।

यहाँ से कुछ दूरी पर जल-मंदिर है। पवित्र पहाड़ों की गोद में, हरे-भरे विशाल वृक्षों के मध्य निर्मित यह जिन मंदिर सचमुच सृष्टि को भक्तों की अनुपम भेंट है। सम्पूर्ण सम्मेलित शिखर पर्वत पर यही एक ऐसा मंदिर है जिसमें तीर्थकर की प्रतिमाएं विराजमान हैं। मंदिर



बीस जिनालय मंदिर का शिखर-दर्शन





पर्वतों की गोद में जलमंदिर

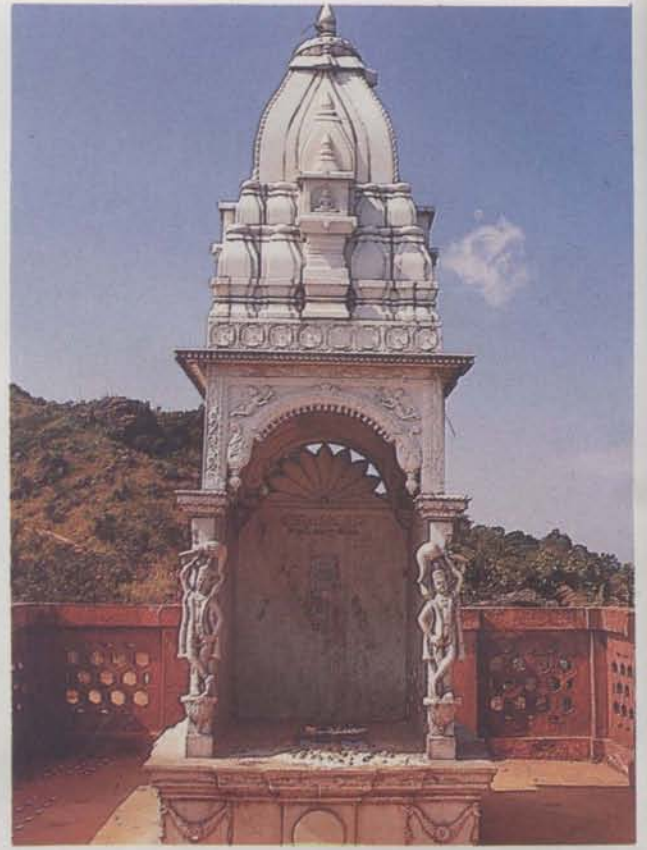
के तीनों ओर प्राकृतिक जल-कुंड है इसलिए इसे जल-मंदिर कहते हैं। मंदिरजी में मूलनायक के रूप में विराजमान शामलिया पार्श्वनाथ भगवान की सौम्य-शान्त प्रतिमा अनायास ही मन को भक्ति-भाव से ओत-प्रोत कर देती है।

इस मंदिर का निर्माण जगत् सेठ श्री खुशाल चन्दजी ने करवाया था। उन दिनों यातायात के साधन नहीं थे। अतः निर्माण की सारी सामग्री मधुवन में एकत्रित की जाती थी और फिर हाथियों द्वारा यहाँ तक लायी जाती थी।

जल-मंदिर से पारसनाथ टूंक जाते समय मार्ग में सर्वप्रथम बीसवीं टूंक श्री शुभ गणधर स्वामी की है। इसके आगे इक्कीसवीं टूंक तीर्थकर श्री धर्मनाथ की है। टूंक में स्थापित चरण सन् १८२५ में प्रतिष्ठित हैं। इसी के आगे मार्ग में श्री वारिषेण शाश्वत जिन की टूंक है। कुछ दूरी पर चौबीसवीं टूंक तीर्थकर श्री सुमतिनाथ की है। यहाँ चैत्र शुक्ला नवमी को भगवान ने निर्वाण प्राप्त किया। पच्चीसवीं टूंक तीर्थकर श्री शांतिनाथ की है।

छब्बीसवीं टूंक तीर्थकर महावीर स्वामी की है। सत्ताईसवीं टूंक तीर्थकर श्री सुपार्श्वनाथ भगवान की है। इसी के आगे अट्ठाईसवीं टूंक तीर्थकर श्री विमलनाथ की है। उन्तीसवीं टूंक तीर्थकर श्री अजितनाथ की है। तीसवीं टूंक तीर्थकर नेमिनाथ की है। यहां सं. १९३४ में प्रभु के चरण स्थापित किये गये थे।

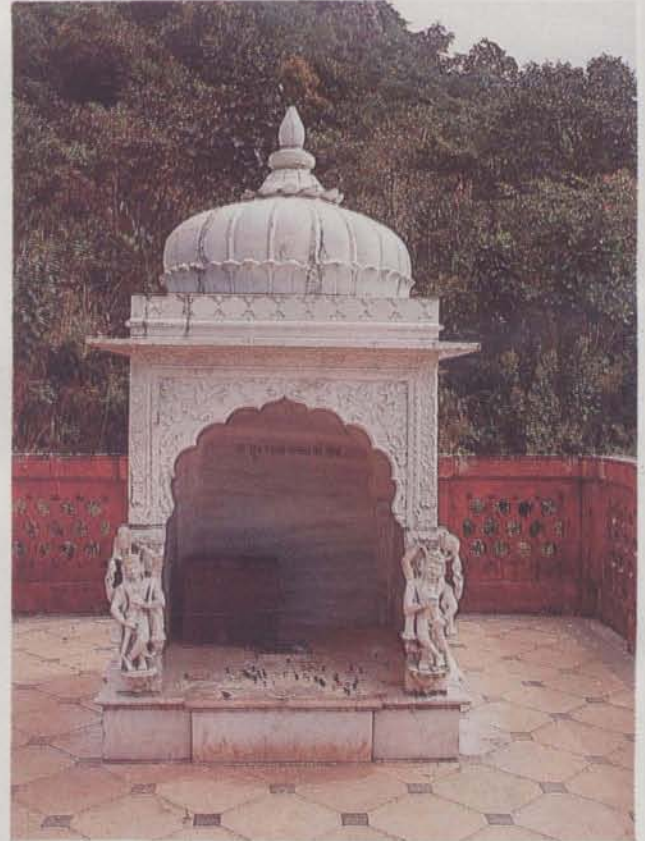
सम्मेत शिखर महातीर्थ की अन्तिम और सर्वोच्च टूंक भगवान



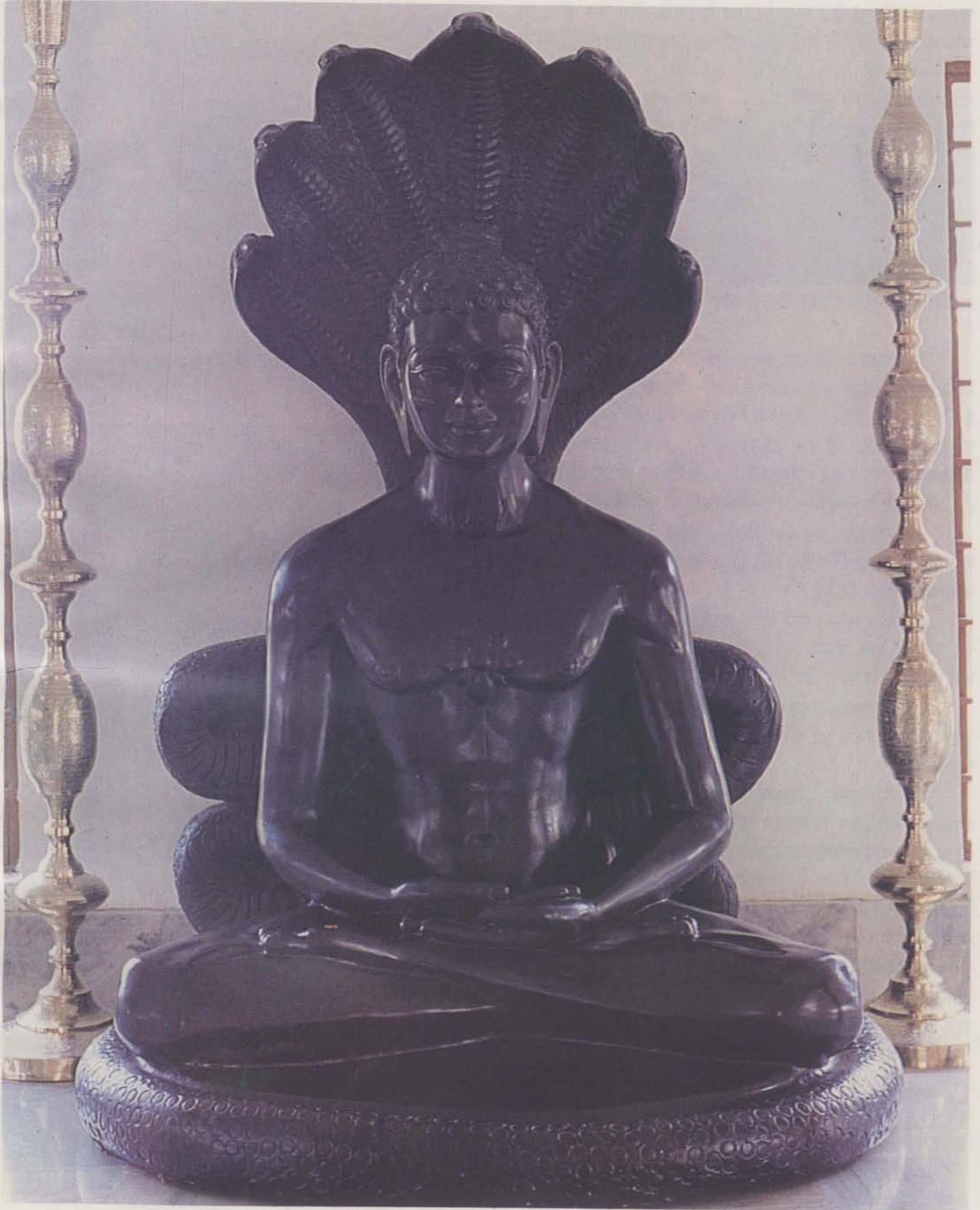
श्री शांतिनाथ टूंक : शांति का सुखद स्थल



परम पिता का समाधि मंदिर



श्री शुभस्वामी की टूंक



जैन म्युजियम में भगवान पार्श्वनाथ : ध्यानयोग की पराकाष्ठा

पार्श्वनाथ की टूंक है। सम्पूर्ण विश्व में इससे ऊँचा जैन मंदिर का कोई भी शिखर नहीं है इसलिये यह शिखर भगवान पार्श्वनाथ का ही नहीं सम्पूर्ण जैनत्व का शिखर है। इसकी ऊँचाई इतनी है कि कभी-कभी तो पूरा मंदिर बादलों से ढक जाता है इसलिए इसे मेघाडम्बर टूंक कहा जाता है। मंदिर का शिखर ३० कि. मी. दूर से भी दृष्टिगोचर होता है। यहां तीर्थंकर पार्श्वनाथ के श्यामवर्णीय चरण प्रतिष्ठित हैं। समुद्र तल से ४४७९ फुट ऊपर है यह टूंक। सम्मेत शिखर की यह अंतिम टूंक है।

सम्मेत शिखर पर्वत की तलहटी को मधुवन कहा जाता है। इसके चारों ओर मधु बिखेरती विशाल वृक्ष घटाए हैं। सम्भवतः इसीलिए इसे मधुवन कहा जाता है। यहाँ अन्य भी कई दर्शनीय स्थल हैं।

श्वेताम्बर कोठी एवं मंदिर—कोठी में प्रवेश करते ही तीर्थ रक्षक श्री भोमियाजी महाराज का मंदिर है। मंदिर काफी नयनाभिराम है। कोठी में ही ग्यारह मंदिरों के समूह रूप विशाल जिन मंदिर हैं। इसे तलहटी मंदिर भी कहा जा सकता है। इसमें मूलनायक के रूप में शामिल पार्श्वनाथ भगवान की ९० से. मी. की प्रतिमा विराजमान है। धर्मशाला के पृष्ठभाग में दादावाड़ी है, जो दर्शनीय है।

दिगम्बर जैन तेरह पंथ कोठी— इसके मध्य में श्री चन्द्रप्रभु भगवान का भव्य मंदिर है। इसी मंदिर के तृतीय द्वार के बांयी ओर समवसरण मंदिर निर्मित है।

चौबीस टूंक— यहाँ प्रवेश करते ही सर्वप्रथम बाहुबली की २५ फुट की भव्य प्रतिमा है। यहाँ चौबीस तीर्थंकर की चौबीस टूंके बनी हुई हैं। इस मंदिर क्षेत्र में समवसरण मंदिर निर्मित है।

कच्छी भवन— इसमें बावन जिनालय निर्मित है। मंदिर में अनेक जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाएं विराजमान हैं। मंदिर का शिखर काफी सुहावना है।

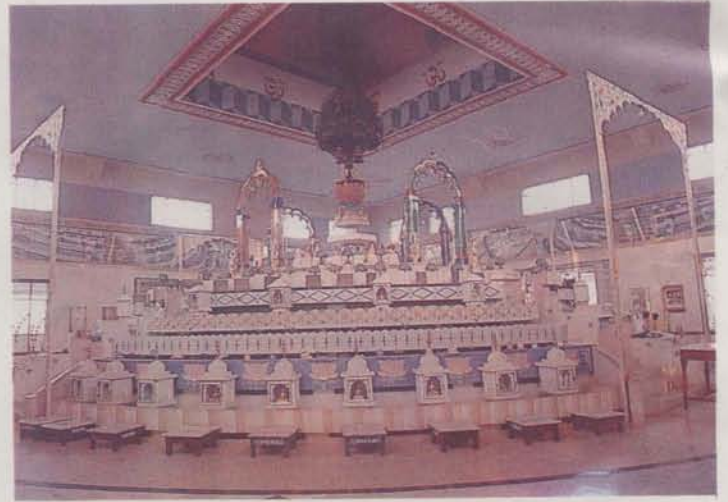
जैन म्यूजियम— शिखर जी तीर्थ के दर्शनीय स्थलों में यह प्रमुख है। म्यूजियम का निर्माण गणिवर श्री महिमाप्रभ सागर जी म. की प्रेरणा से श्री जितयशा फाउंडेशन, कलकत्ता ने किया है। म्यूजियम के प्रथम तल में जैन धर्म से सम्बन्धित विविध सामग्री संकलित है। विशाल हॉल में सामने ही भगवान पार्श्वनाथ की ६ फुट की भव्यतम ध्यानस्थ प्रतिमा विराजमान है। चारों ओर दीवारों पर जैन स्थापत्य कला को दर्शाने वाली चित्र-प्रदर्शनी लगी है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में यही एक मात्र ऐसा म्यूजियम है, जहाँ जैन-धर्म पर प्रसारित समस्त डाक टिकटों का संकलन है।

प्रथम तल में ही प्राचीन हाथी दांत एवं चंदन की कलाकृतियों का संकलन है। म्यूजियम के द्वितीय तल में जैन-धर्म के विशेष घटनाक्रम को दर्शाती ५० झांकियां निर्मित हैं। झांकियां इतनी जीवन्त हैं कि आप दिल दे बैठेंगे।

इनके अतिरिक्त धर्ममंगल विद्यापीठ, भोमिया भवन, मध्य लोक आदि भी दर्शनीय हैं।



जैन म्यूजियम में निर्मित मनोरम झांकी



समवसरण मंदिर : अतीत की नवीनतम प्रस्तुति



कला का केंद्र : जैन म्यूजियम



● हस्तिनापुर

हस्तिनापुर देश की प्राचीनतम राजधानी मानी जाती है। महाभारत सम्बन्धी सारी राजनीति का मंच यह नगर ही रहा है। हस्तिनापुर में कौरव और पांडव, धर्म और अधर्म, सत्य और असत्य के संग्राम लड़े गये। हस्तिनापुर नगर की माटी ने भीष्म पितामह जैसे महापुरुष को जन्म दिया, जिन्होंने राजनीति और धर्मनीति के युग-युगीन संदेश दिये। विदुर-नीतियों का निर्माण भी हस्तिनापुर की ही धरती पर हुआ। सचमुच हस्तिनापुर भारत के इतिहास का वह संविभाग रहा है जिसके धरातल पर कालचक्र ने आत्म-तटस्थता से कई उतार-चढ़ाव देखे हैं।

हस्तिनापुर का इतिहास उक्त संदर्भ-समय से भी प्राचीन रहा है। जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान् आदिनाथ से हस्तिनापुर का ऐतिहासिक सम्बन्ध रहा है। भगवान् शांतिनाथ, कुंथुनाथ एवं अरहनाथ के च्यवन, जन्म, दीक्षा एवं कैवल्य कल्याणक यहीं पर हुए थे। जिस स्थान से चार तीर्थंकरों का सम्बन्ध रहा हो, वह स्थली तो पावनता से आलोड़ित रहती है।

श्री भरत चक्रवर्ती से लेकर कुल १२ चक्रवर्ती हुए, जिनमें ६ चक्रवर्तियों ने हस्तिनापुर में जन्म पाया। परशुराम का जन्म भी यहीं हुआ।

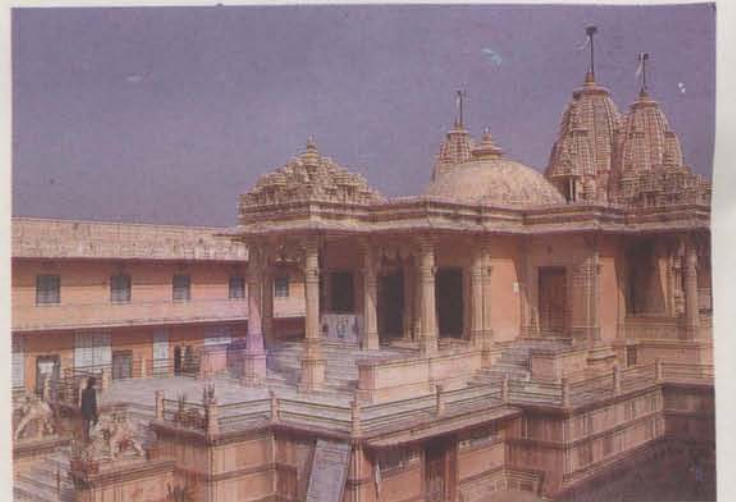
शास्त्रीय उल्लेखानुसार प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव ने यहां राजा श्रेयांस कुमार द्वारा एक वर्ष की अपनी सुदीर्घ तपस्या का पारणा किया था। तीर्थंकर ऋषभ मुनि-दीक्षा स्वीकार करने के बाद एक वर्ष तक शुद्ध आहार उपलब्ध नहीं कर पाये। सुपात्रदान की विधि से अनभिज्ञ होने के कारण भक्तजन उन्हें रत्न, हाथी, घोड़े इत्यादि भेंट करना चाहते थे, लेकिन एक श्रमण के लिये भला इनकी क्या आवश्यकता। ऋषभदेव को लगभग ४०० दिनों तक निराहार रहना पड़ा। अन्त में नरेश श्रेयांस ने इक्षुरस प्रदान कर भगवान् के सुदीर्घ तप का पारणा करवाया। यह तप वर्षीतप कहलाता है। हस्तिनापुर में भगवान् द्वारा यह पारणा किये जाने के कारण ही लोग यहां आकर वर्षीतप का पारणा करते हैं। यह दिन अक्षय पुण्य का दिन माना जाता है, इसीलिए इसे अक्षय तृतीया कहते हैं।

सम्राट अशोक के पौत्र संप्रति ने यहां जिनालयों का निर्माण करवाया था। आचार्य श्री यक्षदेव सूरि, सिद्धसूरि, रत्नप्रभसूरि, कक्कसूरि जैसे प्रभावक आचार्यों का यहां संघ सहित आगमन हुआ था।

आचार्य श्री जिनप्रभ सूरि सं. १३३५ में एक यात्रा संघ लेकर



तीर्थाधिराज श्री शांतिनाथ भगवान्



मंदिर के शिखर



भगवान ऋषभदेव एवं नरेश श्रेयांसः इक्षुरस से वर्षीतप का पारणा

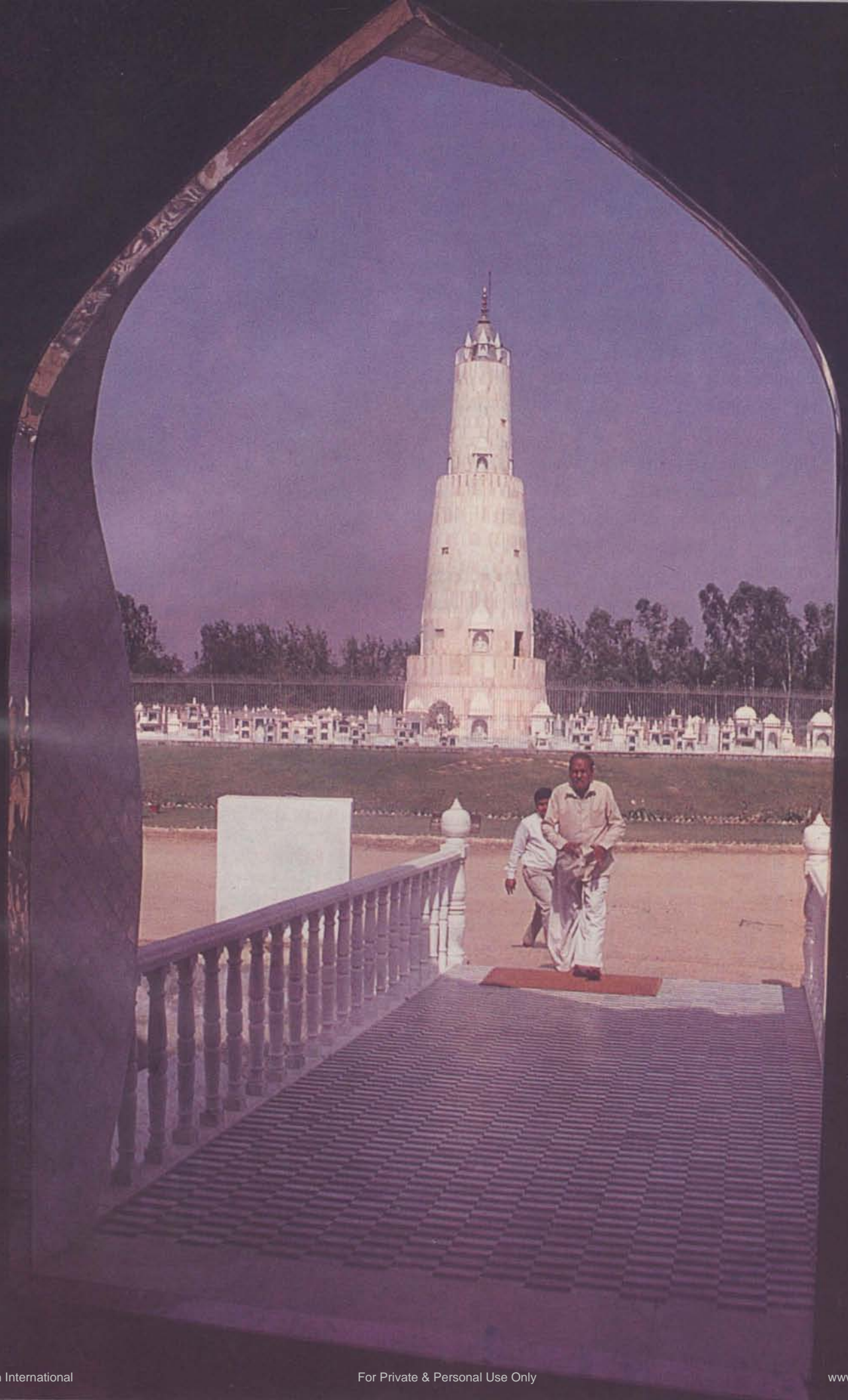


चरण पादुका मंदिर



जंबुद्वीप का एक भाग

जंबुद्वीप→



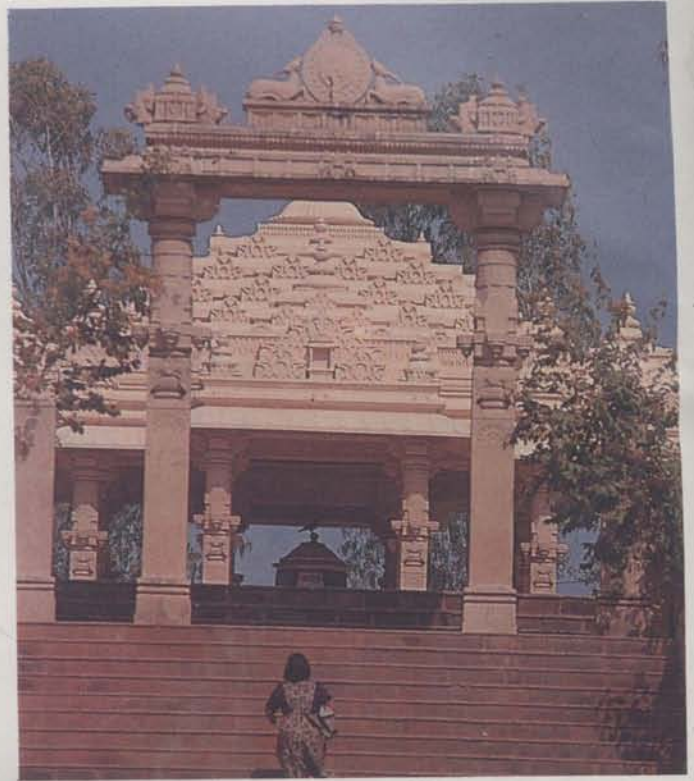
हस्तिनापुर आए थे। प्राप्त सन्दर्भों से ज्ञात होता है कि उस समय यहां भगवान शांतिनाथ, अरहनाथ एवं मल्लिनाथ के मंदिर निर्मित थे।

सं. १६२७ में आचार्य जिनचन्द्र सूरि जी का भी हस्तिनापुर पदार्पण हुआ था तब यहां चार मंदिर निर्मित थे।

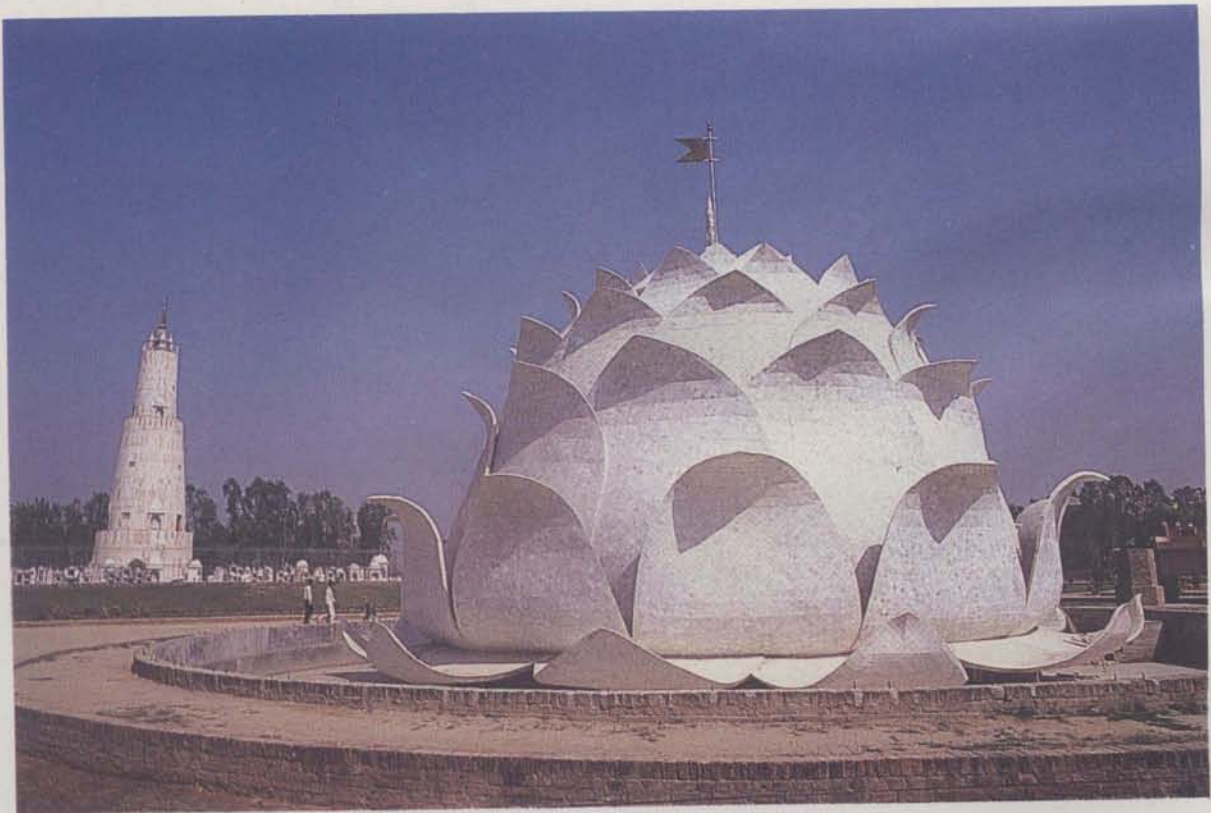
अभी वर्तमान में यहां श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों के विशाल मंदिर हैं। श्वेताम्बर मंदिर का अंतिम जीर्णोद्धार २०२१ में पूरा हुआ था एवं दिगम्बर मंदिर की प्रतिष्ठा सं. १८५३ में हुई थी। श्वेताम्बर मंदिर के पृष्ठ भाग में पारणा मंदिर निर्मित है जहां भगवान ऋषभदेव को पारणा कराते हुए श्रेयांस की भव्य प्रतिमा विराजमान है। इसी मंदिर के बाहर विशाल प्रांगण में वर्षीतप का पारणा होता है। इसके लिए प्रबन्धक समिति ने एक विशाल परिसर में हॉल बना रखा है। यह पारणा-दिवस वास्तव में हस्तिनापुर के लिए एक विशाल मेला है।

धर्मशाला और भोजनशाला के अतिरिक्त भगवान आदिनाथ का एक और मंदिर है, जहां भगवान ने पारणा किया था। उस पावन प्रसंग की स्मृति में वहां भगवान की चरण-पादुका स्थापित की हुई है। ईख की समृद्ध खेती से यह क्षेत्र फला-फूला हुआ है।

जंबुद्वीप हस्तिनापुर-तीर्थ की एक प्रमुख विशेषता है। जंबुद्वीप की उज्ज्वल धवल रचनात्मक प्रस्तुति के साथ यहाँ निर्मित कमल मंदिर भी अपने आप में अप्रतिम है।



प्राचीन चरण मंदिर



कमल मंदिर



● શ્રવણબેલગોલા

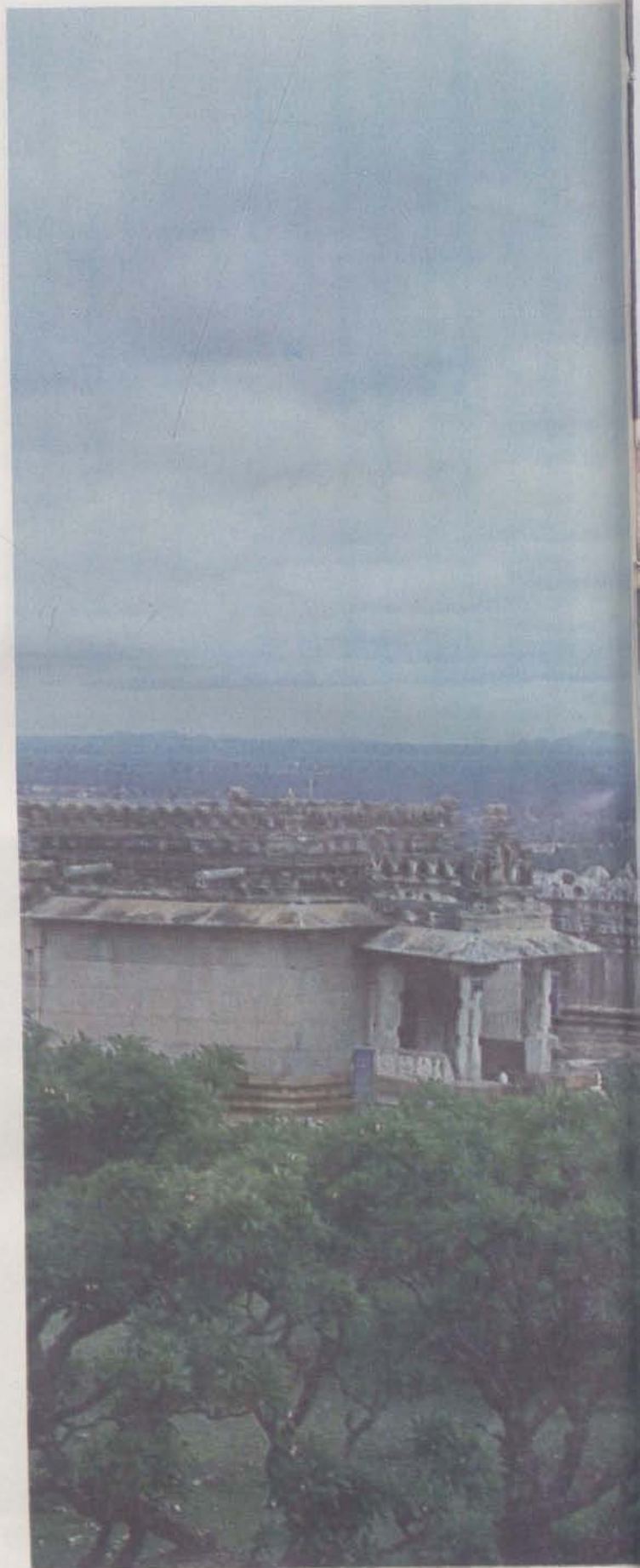
श्रवणबेलगोला भगवान बाहुबली का पवित्रतम अतिशयुक्त तीर्थ-स्थल है। यह वह तीर्थ-स्थली है जहां भगवान बाहुबली की एक ऐसी प्रतिमा परिनिर्मित है, जो संसार की सबसे बड़ी मूर्तियों में एक गिनी जाती है। सामान्यतया भगवान बाहुबली की भारत में जहाँ पर भी प्रतिमाएं हैं, उनकी ऊँचाई अधिक ही होती है। श्रवणबेलगोला में स्थित बाहुबली की मूर्ति ५७ फीट की है। खास बात यह है कि मूर्ति पर्वत को काटकर बनाई गई है। पर्वत का पत्थर और मूर्ति का पत्थर दोनों संलग्न, संबद्ध और अखंड है। यह पर्वत तलहटी से ५९५ मीटर ऊंचा है।

श्रवणबेलगोला के बाहुबली को गोमटेश्वर भी कहा जाता है। 'गोमट' शब्द शिखर का वाचक है। पर्वत के शिखर पर बाहुबली की विशाल प्रतिमा होने के कारण ही यह गोमटेश्वर के नाम से विख्यात हुई है। इस विराट प्रतिमा की प्रसिद्धि विदेशों तक है। हजारों विदेशी पर्यटक इस विशाल मूर्ति को देखने के लिए यहां तक आते हैं। वार्षिक तीर्थ-यात्रियों की संख्या लाखों तक है। प्रति बारह वर्ष में गोमटेश्वर बाहुबली का महामस्तकाभिषेक संपन्न होता है। इस अभिषेक में सम्मिलित होना सौभाग्य और पुण्योदय माना जाता है। प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी भी इस अभिषेक में सम्मिलित हो चुकी है। राष्ट्र ने बाहुबली की प्रतिमा को अपने अतीत का गौरव मानते हुए इस पर डाक-टिकट भी जारी किये हैं।

भगवान बाहुबली की यह प्रतिमा विक्रम की ग्यारहवीं सदी में निर्मित हुई थी। प्राप्त ऐतिहासिक संदर्भों के आधार पर राजा गंगरस के प्रधान श्री चामुंडराय की मातुश्री सं. १०३७ में बाहुबली के दर्शन के लिए पोदनापुर जा रही थी। उन्होंने विध्यगिरी पर्वत के सम्मुख स्थित चंद्रगिरी पर्वत पर विश्राम लिया। यहीं उन्हें किसी अदृश्य शक्ति के द्वारा विध्यगिरी पर्वत पर भगवान बाहुबली की इस प्रकार की विशाल मूर्ति स्थापित करने की प्रेरणा मिली। श्री चामुंडराय ने अपनी माँ की इच्छा-पूर्ति के लिए अपने धन की तिजोरियाँ खोल दीं। यह एक श्रमसाध्य कार्य था, किन्तु इस निर्माण के पीछे किसी पराशक्ति का भी हाथ रहा। परिणामस्वरूप यह विशाल प्रतिमा साकार हुई।

प्रतिमा के प्रतिष्ठा-महोत्सव में एक दिलचस्प घटना घटी।

श्री चंद्रगिरी पर्वत→





बाहुबली पर नीर-क्षीर-चंदन का किया जा रहा अभिषेक उनके माथे से सीधा जमीन पर ढरा चला जा रहा था। मस्तक पर डाला गया नीर-क्षीर जब तक चरणों का स्पर्श न कर ले प्रतिष्ठा अपूर्ण कहलाती है। लाख कोशिश के बावजूद जब यह कार्य संपन्न न हुआ, तो अन्त में अज्जिकागुली नामक एक निर्धन महिला को इस अधूरी रह रही प्रतिष्ठा को पूर्ण कराने का गौरव प्राप्त हुआ। दूर गांव से पत्तों के दौनों में लाये गये शुद्ध दूध को भगवान ने स्वीकार किया। इस अहोभावपूरित घटना की स्मृति में अज्जिकागुली की प्रतिमा भी यहाँ बनाई गई।

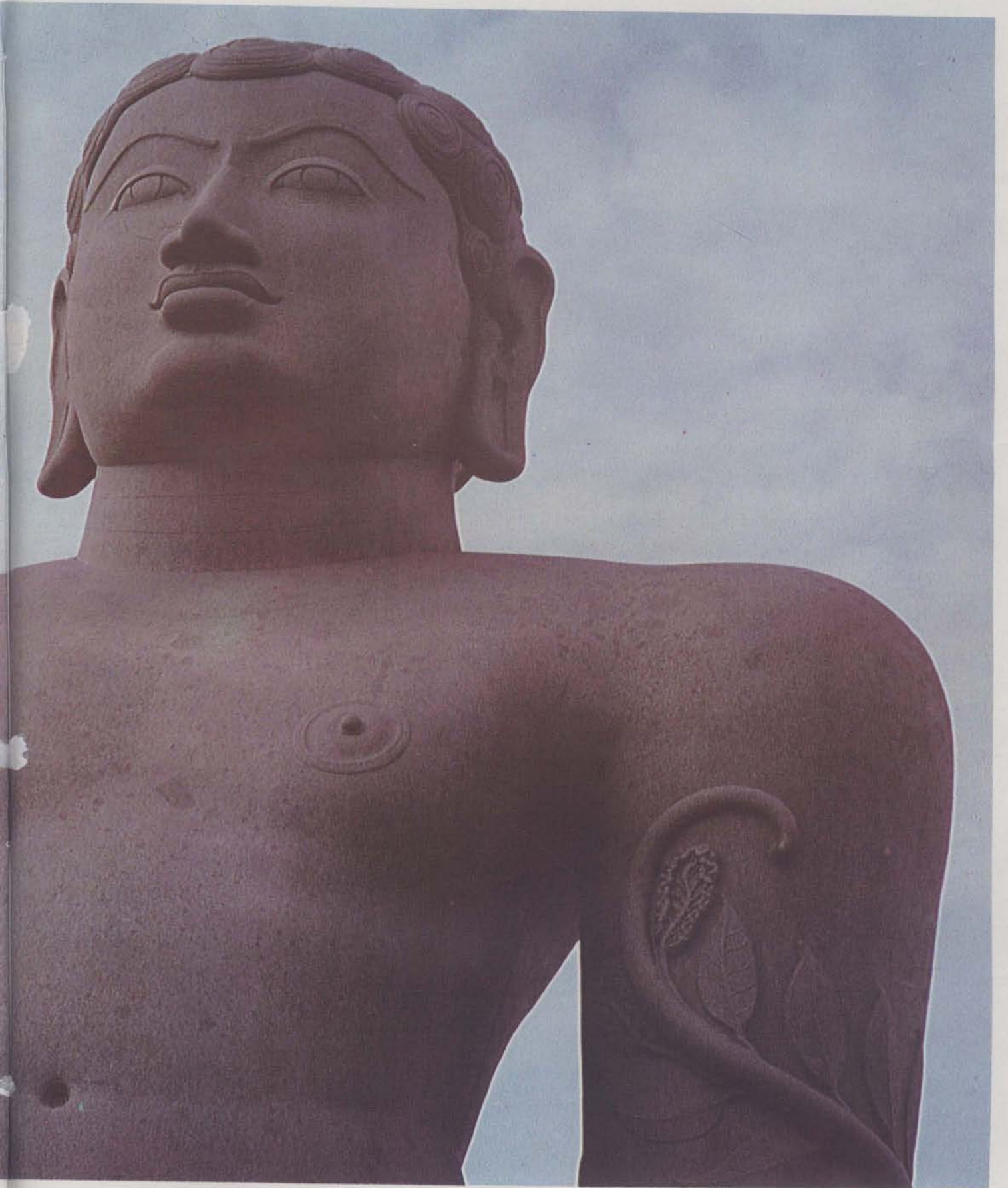
विंध्यगिरी पर्वत के सामने ही चंद्रगिरी पर्वत है। विंध्यगिरी पर कुल सात मंदिर हैं, जबकि चंद्रगिरी पर्वत पर कुल चौदह मंदिर हैं। कहा जाता है कि लगभग २००० वर्ष पूर्व आचार्य भद्रबाहु स्वामी के साथ सम्राट चंद्रगुप्त भी यहां आये थे। सम्राट ने तपस्या करते हुए यहीं पर अपना समाधिमरण लिया। इसी से इस पर्वत का नाम चंद्रगिरी पर्वत पड़ा। यहां भगवान आदिनाथ का प्राचीनतम मंदिर है। आचार्य भद्रबाहु स्वामी की पादुकाएं हैं। एक अधघड़ी मूर्ति भी है, जो भगवान आदिनाथ के पुत्र चक्रवर्ती भरत की कही जाती है।

श्रवणबेलगोला में एक जैन मठ भी है, यहां नवरत्नों की दिव्य सतरह प्रतिमाएं भी देखने को मिलती हैं।

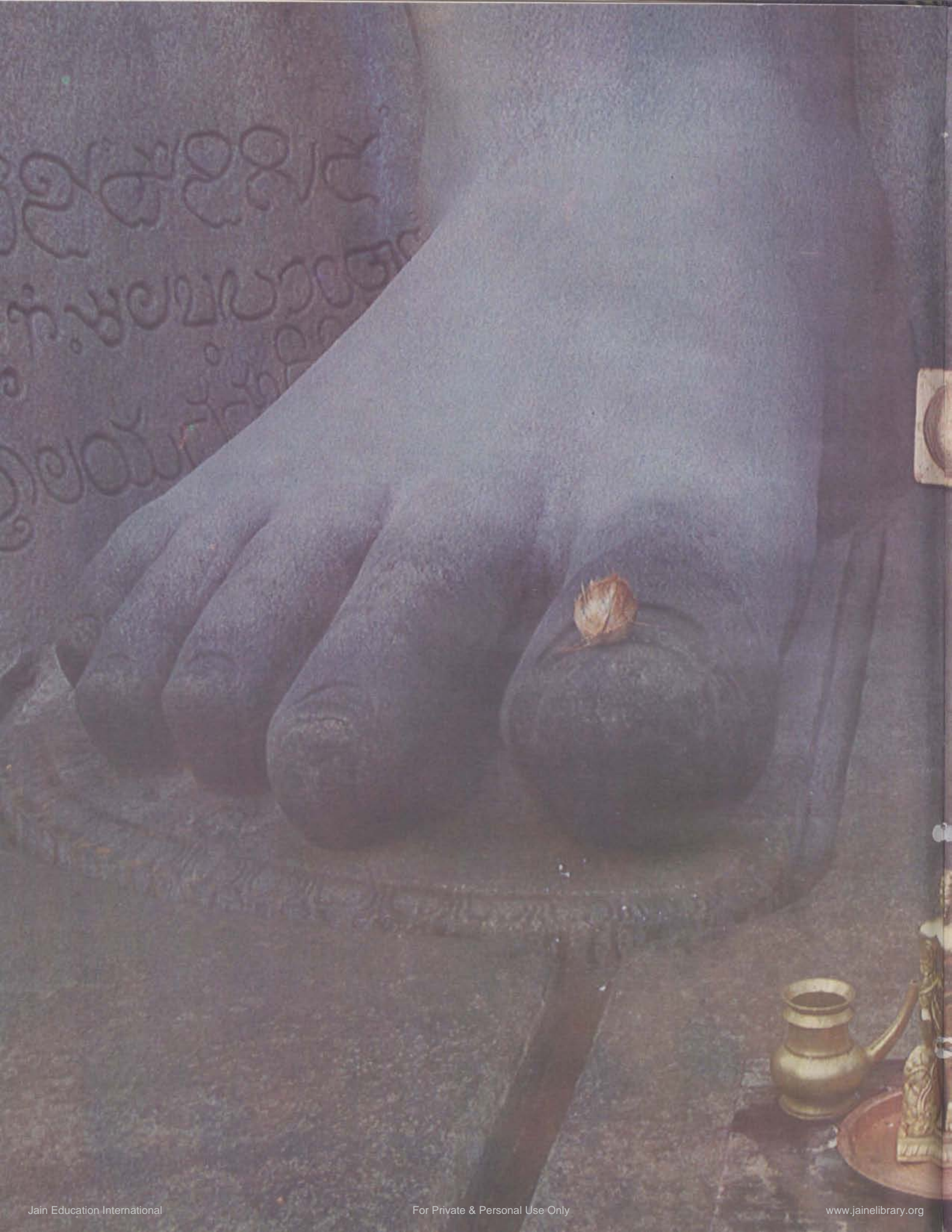


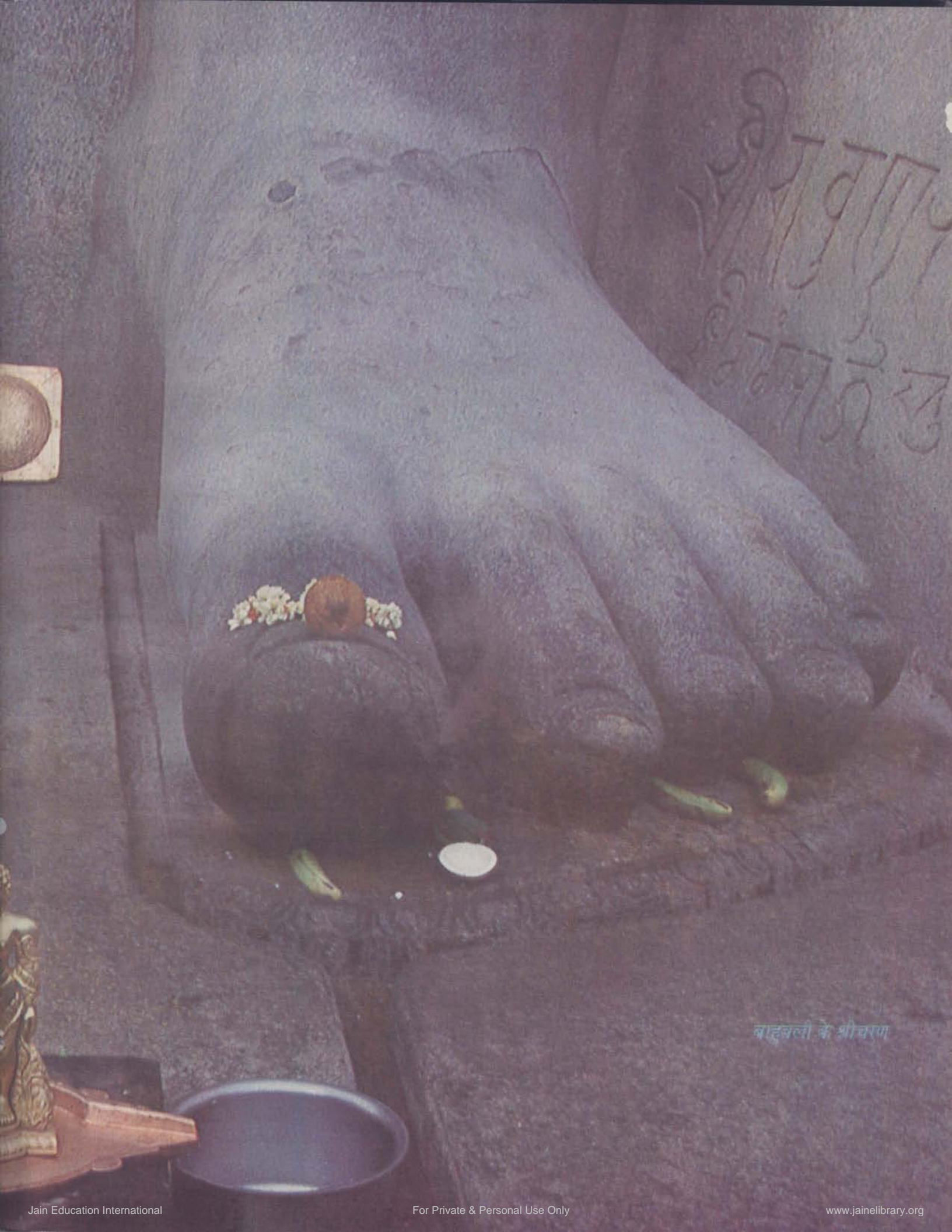
बाहुबली : संसार की सबसे बड़ी प्रतिमाओं में एक





भगवान बाहुबली साधना के प्रतीक





बाहुबली के श्रीचरण



सहवर्ती प्रतिमा : दक्षिण शिल्प का नमूना

